प्रस्तावना ।

—:०:—

हमारे देशके इतिहासमें मौर्य-कालका वृत्तांत स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है। उसी कालमें प्रथम बार बंगालकी खाड़ीसे अरबके समुद्रतक फैला हुआ हमारा देश एकच्छत्र राज्यके अंतर्गत हुआ। इतिहासके पढ़नेवालोंको इस कालका वृत्तान्त अति रुचिकर है। क्योंकि हमारे देशके श्रृङ्खलाबद्ध इतिहासके न होनेपर भी मौर्यवंशके राजत्वकालका इतिहास प्रामाणिक रूपसे पाया जाता है। यहाँतक कि तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवस्थाका भी यथेष्ट विवरण उस समयकी पुस्तकोंमें मिलता है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्रके पढ़नेसे इस व्यवस्थाकी आन्तरिक दशापर भी प्रकाश पड़ता है और उस समय न्याय-कार्योंमें सर्वसाधारण जनताके विचारों और मतोंका कितना आदर किया जाता था, राजकीयसभाद्वारा निर्मित होनेपर भी उक्त न्यायोंका अन्तिम आधार सर्वसाधारण मत ही था, इसका भी पता उसी पुस्तकसे चलता है।

ऐतिहासिक दृष्टिको छोड़कर देशभक्तिकी दृष्टिसे भी मौर्य्यवंशका काल हमारे देशके इतिहासमें बड़े गौरवका समय था। यूनानी आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करके विदेशोंपर भारतवर्षका आतंक बैठाना, अर्वाचीन इतिहासमें प्रथम बार भारतवर्षकी सीमाको काबुल और हिरात तक फैलाना, देशके ऐश्वर्य्यके कुछ अप्रधान प्रमाण नहीं हैं। उन दिनोंके इतिहासको पढ़कर आज भी हृदयमें देशभक्ति उमड़ आती है।

उक्त ऐतिहासिक कालके केन्द्र महाराज चन्द्रगुप्त थे। संसारके अन्य महान् पुरुषोंकी भाँति उनको भी अपने जीवनमें अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, [illegible] बाधाके विघ्नोंका सामना करना पड़ा था। पिताकी मृत्युके अनन्तर पाटलिपुत्रसे [illegible] उन्होंने हो, नवयुवक चन्द्रगुप्त बहुत दिनों देश-विदेश घूमा किया और इसी [illegible] दर्शाया है। उसकी भेंट सिकन्दरशाहसे हुई। क्या आश्चर्य है, जो व्यक्त महा[illegible]ार, व्यवहार,

न्दर, और महत्त्वके बीज धारण किये हुए नवयुवक चन्द्रगुप्तकी भेंट चन्द्रगुप्तके भविष्य महत्त्वाभासका एक कारण हुई हो। विन्सेण्ट स्मिथ साहबने भी स्वरचित 'दि अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया'में इस भेंटका उल्लेख किया है। अस्तु। सिकन्दर-शाहके उदाहरणसे उत्तेजित होकर चन्द्रगुप्तने सेना इकट्ठी की और कई बार प्रयत्न करके अन्तमें कौटिल्य (चाणक्य) की कूटनीतिकी सहायतासे महाराज नन्दको परास्त किया और मगधदेशका राज्य हस्तगत किया। तदुपरान्त धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते उन्होंने प्रायः समस्त भारतवर्षपर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और वे संसारमें सम्राट् चन्द्रगुप्तके नामसे विख्यात हो गये।

सिकन्दरशाहकी मृत्युके अनन्तर भारतवर्षके ऊपर आक्रमण करनेवाले यूनानी दलोंके नायकोंमें पारस्परिक स्पर्धाजनित द्वेषके कारण झगड़ा खड़ा हो गया। प्रधानतः सेल्यूकस और एण्टीगोनस नामक यूनानी सेनाध्यक्षोंमें इस स्पर्धाकी अग्नि बड़ी प्रचण्डतासे प्रज्ज्वलित हुई। इसमें विजय-लक्ष्मीने कई बार पलटा खाया, परन्तु अन्तको सेल्यूकस विजयी हुआ। उसने सिकन्दरशाहके भारतीय आक्रमणको पूरा करनेकी अपने मनमें ठानी और यूनानी सेनाको लेकर भारतवर्षपर धावा कर दिया; परन्तु चन्द्रगुप्तसे मुठभेड़ होनेपर उसको नीचा देखना पड़ा और विवश हो एक लज्जास्पद सन्धि करनी पड़ी। काबुल, कन्दहार और हिरात तकका अफगानी देश उसने महाराज चन्द्रगुप्तको दिया और इस सन्धिको चिरस्थायी करनेके लिए अपनी कन्याका चन्द्रगुप्तके साथ विवाह कर दिया। इन सबके परिवर्तनमें सेल्यूकसको केवल पाँच सौ हाथी मिले। यह सन्धि यद्यपि यूनानियोंके लिए लज्जास्पद थी; परन्तु भारतवासियोंके लिए बड़ी ही गौरवास्पद थी और है। चन्द्रगुके समयमें मेगास्थनीज नामक एक यूनानी विद्वान् और दार्शनिक भारतवर्षमें आया और पाटलिपुत्रमें कई वर्षों तक रहा। ऊपर कही हुई सब बातें ऐतिहासिक घटनायें हैं। इस यूनानी विद्वान् मेगास्थनीजने अपनी 'भारतीय यात्रा'की एक पुस्तक लिखी थी। उससे चन्द्रगुप्तकी शासनपद्धति, न्याय-संगठन और तत्कालीन आचार-विचारोंका बहुत कुछ पता चलता है। जैसा कि र कहा जा चुका है, हमारे देशकी ये ऐतिहासिक घटनायें बहुत ही रुचिकर हैं ाथ ही साथ कवियोंकी प्रतिभाको उत्तेजित करनेके लिए भी बहुत हैं।

म संस्कृतके महान् कवि विशाखदत्तने उक्त घटनाओंको लेकर 'मुद्रा-नाटककी रचना की थी। प्रो० मैक्डानल साहबके मतानुसार इस नाट-

कको रचना ईसवी सन् ८०० के लगभग हुई है। यदि यही मान लिया जाय कि यह नाटक ईसवी सन् ८०० में ही रचा गया, तो यह मानना पड़ेगा कि चन्द्रगुप्तके यूनानियोंको भारतवर्षसे मार भगानेके ११२२ वर्ष अनन्तर यह नाटक रचा गया। क्योंकि सिकन्दरशाहकी मृत्यु ईसासे ३२३ वर्ष पूर्व हुई थी और उसके एक वर्षके बाद ही भारतवर्षपर यूनानियोंके अधिकारका अन्त हो गया था। ११२२ वर्ष बाद तक उक्त घटनाओंको विषयी करके अन्य कोई साहित्य-ग्रन्थ रचे गये या नहीं, इसका कोई पता नहीं चलता है; परन्तु इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि लगभग एक सहस्र वर्षोंके बाद तक मौर्यवंशकी विजय-वार्त्ताओंका इतना रुचिकर प्रभाव भारतीय विद्वन्मण्डलपर था कि मुद्राराक्षस कुछ ही कालमें सर्वप्रिय हो गया और एक ऊँची श्रेणीका नाटक समझा जाने लगा। मुद्राराक्षस नाटकका केन्द्र चाणक्य है और चन्द्रगुप्त उसके हाथमें एक कठपुतलीकी भाँति है। चाणक्यकी कूटनीति और उसकी प्रचारित जासूस-प्रथा मुद्राराक्षसके प्रधान नाटक-घटनोद्भावक विषय हैं। उसमें देशभक्तिके भावों अथवा विश्वप्रेमके उच्चादर्शोंका वर्णन नहीं है। मनुष्यके मनकी नीचवृत्तियोंको आधार बनाकर स्पर्धाशील नर-पुंगव अपनी उच्च आकांक्षाओंको कैसे पूरा करते हैं, इसीको मुद्राराक्षसके रचयिताने दिखलाया है। चाणक्यकी उपमा मेकियावेलीसे दी गई है और चाणक्यके आचरणके इसी कोमलभावरहित, शुष्क, और नीरस पहलूको कविने मुद्राराक्षसमें दिखलाया है।

हमारे समयमें भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने मुद्राराक्षसका हिन्दीमें अनुवाद किया है। अनुवाद अति सरस और उत्तम है; परंतु वह केवल अनुवाद ही है, भारतेन्दुने अपनी स्वतन्त्र नाट्य-प्रतिभा और कल्पनासे उसमें कुछ भी काम नहीं लिया है।

स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल रायने विक्रम संवत् १९६६ में चन्द्रगुप्त नामक नाटकको बंगला भाषामें रचना की। द्विजेन्द्रबाबूके नामसे हिन्दीसाहित्यसेवी-समाज अपरिचित नहीं है। उनके बनाये हुए सात आठ नाटकोंके अनुवाद हिन्दीमें प्रकाशित हो चुके हैं और बड़े चावसे पढ़े जाते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि बंगभाषामें द्विजेन्द्रबाबू एक सर्वोच्च नाटककार हो गये हैं। वे बंगभाषाके साहित्यमें नाटक-रचनाकी एक नवीन प्रणालीका प्रचार कर गये हैं। उन्होंने अपने नाटकोंमें देशभक्तिके उच्च भावों और जीवनके उच्च आदर्शोंको दर्शाया है। उन्होंने जिस समयकी घटनाओंका वर्णन किया है, उस समयकी आचार, व्यवहार,

और सामाजिक व्यवस्थादि सम्बन्धी बातोंका ध्यान रखते हुए भी देशकी वर्तमान जागृतिका बड़ी योग्यतासे समावेश किया है। उत्कट देशभक्तिमें संकीर्णता होती है। इस संकीर्णताके विना देशभक्ति एक प्रकारसे हो ही नहीं सकती। एक ही देशकी उन्नति चाहनेमें, एक ही देशके लिए प्राणतक दे देनेमें, भी संकीर्णता है; परन्तु संकीर्णता दोषके होते हुए भी देशभक्ति एक महान् भाव है। उससे भी ऊँचा भाव विश्व-भक्ति अथवा विश्व-प्रेम है। चन्द्रगुप्त लिखनेके एक वर्ष पूर्व द्विजेन्द्रबाबूने 'मेवाड़-पतन' नामक नाटक लिखा था। उसमें मानसीके चरित्र-चित्रणमें इसी विश्व-प्रेमके भावका दिग्दर्शन किया है। गोविन्दसिंहकी संकीर्ण देशभक्ति और मानसीके उदार प्रेमको अपने सामने रखकर योग्य नाटककारने विश्वप्रेमकी उच्चता और देशभक्तिकी उपयोगिताको दर्शाया है। संकीर्ण होनेपर भी देशभक्ति देशके स्वतंत्र जीवनके लिए अत्यन्तावश्यक है। विना देशभक्तिके न तो कोई देश स्वतन्त्र हो सकता है, और न स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। नाटककारने मेवाड़-पतनमें यही उपदेश देकर यह दिखाया है कि देशभक्ति विश्वव्यापक विश्व-प्रेम-भाव तक पहुँचनेके लिए एक सीढ़ी है। चन्द्रगुप्तमें वही विश्वप्रेम हेलेनके चरित्रमें निरूपण किया गया है। मानसीमें जिस विश्वप्रेमका अंकुर था, वह विश्वप्रेम हेलेनमें पल्लवित हुआ है। हेलेनका जीवन विश्वप्रेमका कार्यरूप है। वर्षोंके पुराने जातीय वैरभावसे ऊँचे उठकर चन्द्रगुप्तके साथ विवाह करके हेलेनने यह दिखा दिया कि विश्वप्रेमके लिए किस प्रकार कार्य करना चाहिए और अपनेको बलि देना चाहिए। देशभक्ति, राजनीति, और देशगौरव इत्यादि बातोंको दिखलाते हुए भी, चन्द्रगुप्त नाटककी मुख्य शिक्षा विश्वप्रेम है।

चन्द्रगुप्त नाटकको मुद्राराक्षस नाटक और दूसरी अन्य ऐतिहासिक घटनाओंकी भित्तिपर खड़ा करने पर भी द्विजेन्द्रबाबूने उसकी रचनामें अपनी स्वतन्त्र नाट्य-कल्पनासे बहुत कुछ काम लिया है। मेगास्थनीजके 'ग्रीक्स इन इण्डिया' प्रभृति इतिहासोंसे द्विजेन्द्रबाबूने इस नाटकके लिए सामग्री इकट्ठी की और मुद्राराक्षससे भी उन्होंने सहायता ली, परन्तु यह सामग्री और सहायता सामान्य ही थी। चरित्रोंके सृजनमें द्विजेन्द्रबाबूने अपनी ही कल्पनासे काम लिया है। चन्द्रगुप्त, चाणक्य, मुरा, सेल्यूकस और एण्टीगोनस ऐतिहासिक व्यक्ति अवश्य हैं; परन्तु उनके चरित्र-चित्रणमें कविने अपनी ही नाट्य-प्रतिभाके रंगसे काम लिया है। द्विजेन्द्रबाबूके चन्द्रगुप्त चाणक्यके हाथकी कठपुतली नहीं है और न चाणक्य कूटनीतिका, कोमल-भाव-रहित यन्त्र मात्र

है। चन्द्रगुप्त, द्विजेन्द्रबाबूके नाटकमें महत्त्वके लक्षणोंको धारण किये हुए एक स्वतन्त्र कार्यपरायण महापुरुष है। इसी तरह चाणक्य एक बृहत् साम्राज्यके शासनकी बागडोरको हाथमें लिये हुए भी मनुष्य-हृदयके कोमल भावोंसे प्रेरित होता है और यह कूटनीतिज्ञ कौटिल्य अपनी एकमात्र कन्याके विरहमें साधारण मनुष्योंकी भाँति रोता है। हाँ, राज्यके सर्वहितकर कामोंमें तत्पर होनेकी अवस्थामें उसमें इतना बल ह कि वह अपने व्यक्तिगत भावोंको दबा रखता है और इसी सिद्धान्तको मानते हुए प्रेमविह्वला, कोमलहृदया, छायाको अपने व्यक्तिगत सौभाग्यकी सर्वजनहितकर, आर्य और यूनानी रक्तमिश्रण, या चन्द्रगुप्त और हेलेनके विवाहरूपी यज्ञमें आहुति देनेको बाध्य करता है। इसी प्रकार एण्टीगोनस और सेल्यूकस इतिहासमें चाहे केवल सेनानायक ही रहे हो, परन्तु कविवर द्विजेन्द्रकी कूँचीद्वारा वे भी मनुष्योचित वरन् महान् मनुष्योचित भावोंके रंगोंसे रंजित किये गये हैं।

जो हो, प्रत्येक दृष्टिसे यह नाटक पढ़ने योग्य है। पहले तो साधारण दृष्टिसे पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि नाटककारने आपसकी वर्णगत स्पर्धाको अपनी पुस्तकका विषय बनाकर चाणक्यकी कूटनीतिद्वारा ब्राह्मण वर्णकी सर्वश्रेष्ठता और उच्चताको प्रतिपादित किया है; परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। समय समयपर वर्णाश्रमसम्बंधी संकीर्ण विचारोंसे प्रेरित होकर लोग अनेक काम करते थे और अब भी करते हैं। सम्भव है कि चाणक्यने भी केवल इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर नन्दवंशका नाश और चन्दगुप्तका ऐश्वर्य सम्पादित किया हो; परन्तु यह न तो नाटकका मुख्य विषय ही है और न उसकी उपादेय शिक्षा। अपने ही वर्णकी उन्नति-कामना आर उसके प्रति किये गये अत्याचारोंके प्रतिशोध लेनेकी आकांक्षा, ये अतिशय संकीर्णभाववाले मनुष्योंकी प्रकृतियाँ है। इन सबका उचित विवरण करने पर भी नाटककारने उदार विश्वप्रेम और उत्कृष्ट ... [illegible] ...धारण असा-
प्रेमके लिए महान् बलिदानकी ही शिक्षा इस नाटकमें दी है। [illegible]

हमने इस नाटकको पढ़कर विचार किया कि [illegible] ...क व्यापारीका खाता प्रतीत
बहुत रुचिकर होगा, आर इसी लि[illegible]...ारण वीरता दिखाई नहीं देती, वही एक
हम बंगाली भाषाके न तो पंडित है ...खाई देता है।
भाषासे कोई अनुवाद ही किया है ...ोंको यह कहाँ पसन्द हो सकता था? उसे तो
अनुवाद नहीं हो सका है। हमें भय ...म्बन करनेवाली अट्टालिका पसन्द है। उसका
परन्तु हम आशा करते हैं कि उदार ... वह सदा तारोंको छूता है। उसके लिए कभी

वादको पढ़ेंगे। यदि इसके पढ़नेसे उनका कुछ भी मनोरंजन हुआ, तो हम अपने यत्नको सफल समझेंगे और भविष्यमें भी ऐसी पुस्तकोंद्वारा उनकी सेवा करनेका साहस करेंगे। इस प्रस्तावनाके लिखनेमें हमें श्रीयुत नवकृष्ण घोष-रचित द्विजेन्द्रबाबूके जीवनचरित्रसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम उनके विशेष रूपसे कृतज्ञ हैं।

लखीमपुर (अवध)
६ जुलाई सन् १९१७ ई०

सूर्य्यनारायण दीक्षित
शिवनारायण शुक्ल

स्वतं
इन इण्डिया
इकट्ठी की और मुद्राराक्षससे
और सहायता सामान्य ही थी। चा
ही कल्पनासे काम लिया है। चन्द्रगुप्त, चाण
गोनस ऐतिहासिक व्यक्ति अवश्य हैं; पर
अपनी ही नाट्य-प्रतिभाके रंगसे काम लिया है
हाथकी कठपुतली नहीं है और न चाणक्य कूट

चन्द्रगुप्त मौर्य

तुलनात्मक आलोचना

[लेखक—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

चन्द्रगुप्त और चाणक्यके अद्भुत जोड़ेके कारनामे विशाखदत्तने मुद्राराक्षसमें लिखे हैं, पर यह नाटक केवल घरू युद्धतक परिमित है। चन्द्रगुप्तके अधिक विस्तृत दिग्विजयोंकी उसमें चर्चा नहीं है। मुद्राराक्षस बहुत विचित्र और प्रशंसनीय नाटक है, पर उसमें एक दोष भी है। उसने मौर्य-साम्राज्य स्थापित करनेकी भारी घटनाको चाणक्य और राक्षसकी दिमाग़ी कुश्ती बना दिया है। इससे बढ़कर और कोई ऊँचा या विस्तृत उद्देश्य चन्द्रगुप्तके विजयों और चाणक्यकी नीतियोंका दिखाई नहीं देता। द्विजेन्द्रलाल रायका नाटक एकतामें और चाणक्यके योग्य रूखेपनमें मुद्राराक्षससे नीचा है; परन्तु कथानकके विस्तार, भावोंकी विलक्षणता और पात्रोंकी अनेकतामें उससे बढ़िया है। मुद्राराक्षसकी कथा दो नगरोंमें समाप्त हो जाती है, परन्तु चन्द्रगुप्त नाटककी कथा मध्य-भारतसे लेकर मध्य-एशियातक फैली हुई है। मुद्राराक्षसमें अद्भुत रस प्रधान है, और उसके सिवा कोई दूसरा रस दिखाई नहीं देता। शृंगारका तो नाम नहीं, वीर रस भी कहीं कहीं आता है—आता भी है तो अद्भुत रसमें लीन हो जाता है। द्विजेन्द्रलाल रायके नाटकमें वीर, शृंगार, करुण और अद्भुत समय समयपर आते हैं और अपना पूरा चमत्कार दिखा जाते हैं। एक विचित्र बात यह है कि, रूखे चाणक्यमें भी राय महाशयने वत्सल-रसका प्रवेश दिखाकर एक नये और अवास्तविक चाणक्यकी रचना कर दी है। अधिक रसों और अधिक पात्रोंने मिलकर राय महाशयके नाटकका सौन्दर्य बहुत बढ़ा दिया है।

मुद्राराक्षस एक बहुत ही विचित्र नाटक है। वह अद्भुत है—असाधारण है, कहीं भी बिलकुल साधारण दशाको नहीं पहुँचता, परन्तु एक साधारण असाधारणताके ऊपर भी नहीं उठता। सारा नाटक एक व्यापारीका खाता प्रतीत होता है। कहीं अनूठा साहस या असाधारण वीरता दिखाई नहीं देती, वही एक नीति—और वही एक दिमाग़ दिखाई देता है।

परन्तु, चन्द्रगुप्त नाटकके कर्त्ताको यह कहाँ पसन्द हो सकता था? उसे तो मकान पसन्द नहीं—आकाशका चुम्बन करनेवाली अट्टालिका पसन्द है। उसका वृक्ष साधारण ऊँचाईका नहीं होता, वह सदा तारोंको छूता है। उसके लिए कभी

वायु नहीं चलता, सदा तूफ़ान चलता है। द्विजेन्द्रलाल रायके किसी नाटकको देखिए—तूफ़ान, बादल, बिजलीकी कड़क और समुद्रकी उत्तुंग तरंगें भरी हुई पाइएगा। राय महाशयके लिए सब कुछ बड़ा है—छोटी चीज़के लिए वहाँ जगह नहीं है। चन्द्रगुप्तमें भी यही दशा है। विशाखदत्तके चन्दनदास या विराध-गुप्तको चन्द्रगुप्तमें जगह नहीं है। यहाँ छाया है, जिसका प्रेम समुद्रकी उमड़ती हुई लहरोंके समान है, हेलेन है, जो यूनानी होकर भारतसे प्रेम करती है, और चन्द्रकेतु है, जिसका मित्रप्रेम अनुपम है। सब कुछ बड़ा है। राय महाशयके लिए दुनियामें कोई मध्यम दर्जा है ही नहीं। आपके सभी नाटकोंकी यह विशेषता है। आपके पास किंग लियर हैं, जूलियस सीज़र हैं—पर बाज़ारमें दूकानपर बैठा हुआ दूकानदार नहीं है, २५) महीना पानेवाला क्लार्क नहीं है। आपके पास पागल हैं, ऋषि हैं, शेर हैं और गीदड़ हैं, पर साधारण दिमाग़ और शक्तिवाले आदमी नहीं हैं। हम नहीं जानते कि इसे आपके नाटकोंका गुण कहें या दोष। कुछ भी हो, इसे हम एक कमी अवश्य कहेंगे। चाणक्य और चन्द्रगुप्तके अद्भुत चरितको राय महाशयकी प्रतिभाने और भी अधिक अद्भुत बना दिया है। राय महाशयकी प्रतिभा वहुत ही विकट आर बहुत ही नफ़ीस है। चन्द्रगुप्तकी माता मुराके बेरंगे चरितको उसने वह रंग दिया है कि देखनेवाला आश्चर्य करता है। आपकी प्रतिभाने चाणक्यके हृदयरूपी रूखे-सूखे बालूमेंसे सन्तान-प्रेमका तेल निकाल दिया है। आपकी प्रतिभाके सामने कात्यायनको भी सिर झुकाकर आधा पागल बनना पड़ा है और कहीं कहीं विदूषकका स्थान पूरा करना पड़ा है। यह सब करके कविकी प्रतिभाने ऐसा चन्द्रगुप्त नाटक तय्यार किया है कि पढ़नेवाला भिन्न भिन्न भावोंकी तरंगोंमें बहता और आनन्द लेता है। कहीं आँसू, कहीं जोश, कहीं आश्चर्य और कहीं घृणाकी तरंगें आकर पढ़नेवालेको इधरसे उधर और उधरसे इधर डुलाती हैं, यहाँतक कि वह तबतक अपने आपको भी भूल जाता है जबतक नाटककी अन्तिम पंक्ति न पढ़ ले।............

यह कहना अनावश्यक है कि नाटक पठनयोग्य है—क्योंकि राय महोदयके जितने काव्य हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयसे अनुवादित होकर छपे हैं वह सभी पढ़ने योग्य हैं। हमने इस नाटकको इन दो तीन महीनोंमें लगभग चार बार पढ़ा है।

(ता० ९-६-१९१९ के दैनिक 'विजय'से उद्धृत)

भूमिका ।

(मूलग्रन्थकारकी लिखी हुई भूमिकाका अनुवाद ।)

इतिहासमें चन्द्रगुप्तका जीवन-वृत्तान्त विशेष रूपसे नहीं पाया जाता । पुराणोंके मतसे वह महापद्मका शूद्राणी पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र और नन्दका सौतेला भाई था । उसने अपने बाहुबलसे नन्दको सिंहासनच्युत किया और आप मगध देशका राजा हो गया । तदनंतर उसने अपने मंत्री चाणक्यकी सहायतासे भारतवर्षमें एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किया । सेल्यूकसके साथ युद्ध और सेल्यूकसकी कन्याके साथ उसका विवाह इन दोनों बातोंका पुराणोंमें उल्लेख तक नहीं है । ये दोनों बातें यूनानी इतिहासके पढ़नेसे मालूम हुई हैं ।

इन दोनों वृत्तान्तोंको एकत्र पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि चन्द्रगुप्तको उसके सौतेले भाई नन्दने देशसे निर्वासित कर दिया, सिकन्दरशाहसे चन्द्रगुप्तका साक्षात् हुआ, पहाड़ी सेनाकी सहायतासे चन्द्रगुप्तने नन्दको पराजित करके मगधका सिंहासन प्राप्त किया और चाणक्यकी सहायतासे समुद्रपर्य्यन्त भारत-वर्षपर अधिकार कर लिया । साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि जब सेल्यू-कसने भारतपर आक्रमण किया, तो चन्द्रगुप्तने उसको पराजित करके उसकी कन्यासे विवाह कर लिया ।

इसी वृत्तान्तको लेकर इस नाटककी रचना की गई है । इतिहाससे कोई विशेष सहायता न मिली, अतएव अन्य कोई उपाय न देखकर कल्पनाहीके ऊपर अधिकतर निर्भय रहना पड़ा है ।

यह मेरा सबसे पहला हिन्दू-राजत्व-कालीन नाटक है । अब तक मने मुस-लमान समयके ही नाटक लिखे हैं । इसका कारण पाठकगण जानते ही होंगे । यद्यपि मुसलमान इतिहासकारोंने अपनी पराजयको छिपाया है, तथापि नाटक

लिखनेके लिए वे लोग यथेष्ट सामग्री छोड़ गये हैं। हिन्दू इतिहासकारोंने तो अपनी विजय-कथा तकको छिपाया है–नहीं लिखा है। वे तो केवल वर्णभेदको लिये बैठे रहे—इसीमें उलझे रहे। इसी लिए उस वर्णभेदको हमने इस नाटककी 'भित्ति' बनाया है—वर्णभेदपर ही इस नाटकको खड़ा किया है।

हिन्दू नाटककार और इतिहासकार प्रधानतः ब्राह्मण चाणक्यका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करनेहीमें व्यस्त रहे हैं। चाणक्यके श्लोक आज भी छात्रोंको पढ़ाये जाते हैं। अँगरेजी इतिहासकार चाणक्यको भारतवर्षका मेकियावेली (Machiavelli) कहते हैं। उनके मतानुसार चाणक्य विद्वान्, बुद्धिमान् और कूटनीतिज्ञ था। हमने भी इसी मतको ग्रहण किया है।

जिस प्रकार सिकन्दरशाहकी भविष्यद्वाणी कि—चन्द्रगुप्त सम्राट् होवेगा—सफल हुई, उसी प्रकार चाणक्यकी भी भविष्यद्वाणी कि—मौर्य्य राजत्वकाल क्षणस्थायी होगा—फलवती हुई। वस्तुतः चन्द्रगुप्तके पौत्र महाराज अशोककी मृत्युके कुछ ही वर्षों पश्चात् मौर्य-राजत्वका अवसान हो गया। जो बौद्धधर्म चन्द्रगुप्तके समयमें सामान्य सम्प्रदायमें ही परिमित था, वही अशोकके समयमें समस्त भारतवर्षमें व्याप्त हो गया।

इस नाटकके लिखनेमें हमें अपने बहुत भाइयोंसे सहायता मिली है, इसके लिए हम उनके ऋणी हैं।

—श्रीद्विजेन्द्रलाल राय।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर (सीरीज़)

इस ग्रन्थमालामें अब तक उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक, प्रहसन, इतिहास, जीवन-चरित, विज्ञान आदि विविध विषयोंके ७५ से ऊपर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनकी सभी साहित्यसेवियोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है। प्रत्येक पब्लिक लायब्रेरी और गृह-पुस्तकालयमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। एक कार्ड लिखकर बड़ा सूचीपत्र मँगा लीजिए।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई

अन्य लेखकोंके नाटक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरमें डी० एल० रायके नाटकोंके सिवाय नीचे लिखे उत्कृष्ट नाटक भी प्रकाशित हुए हैं—

१—**मुक्तधारा** (कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोरकृत) ॥≡)

२—**प्रेम-प्रपञ्च** (जर्मन महाकवि शीलरकृत) ॥≡)

३—**प्रायश्चित्त** और **उन्मुक्तिका बन्धन** (बेल्जियन महाकवि मेटरलिंककृत) ॥)

४—**ठोक-पीटकर वैद्यराज** (फ्रान्सीसी नाट्याचार्य मौलियरकृत) ॥)

५—**अञ्जना** (श्रीसुदर्शनकृत मौलिक नाटक) १=)

६—**चिर-कुमार-सभा** (रवीन्द्रनाथकृत) १।)

नोट—स्व० द्विजेन्द्रलाल रायके नाटकोंकी सूची इस पुस्तकके अन्तमें दी हुई है ।

नाटक-पात्र ।

पुरुष

नन्द	...	मगधके राजा
चन्द्रगुप्त	...	नन्दके सौतेले भाई, पीछे भारत-सम्राट्
वाचाल	....	नन्दका साला
चाणक्य	....	एक ब्राह्मण, पीछे चन्द्रगुप्तका मन्त्री
कात्यायन	...	नन्दका मन्त्री
चन्द्रकेतु	...	मलय देशका राजा
सेल्यूकस	....	सिकन्दरशाहका सेनापति, पीछे यूनान-सम्राट्
एण्टीगोनस	...	यूनानका एक सेनापति

स्त्री

हेलेन	...	सेल्यूकसकी कन्या, पीछे भारत-सम्राज्ञी
छाया	...	चन्द्रकेतुकी बहिन
मुरा	...	चन्द्रगुप्तकी माता

चन्द्रगुप्त ।

प्रथम अंक ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—सिन्धु नदीका तट, दूरमें यूनानी जहाजोंका बेड़ा ।

समय—सन्ध्या ।

[नदीके तटपर शिविरके सम्मुख सिकन्दर और सेल्यूकस अस्तगामी सूर्य्यकी ओर देख रहे हैं । हेलेन सेल्यूकसका हाथ पकड़े हुए उसके पार्श्वमें खड़ी है, और सूर्य्यकी किरणें उसके मुखपर पड़ रही हैं ।]

सिकन्दर—सेल्यूकस, सच है, यह देश बड़ा ही विचित्र है। दिनमें प्रचण्ड सूर्य्य इसके गहरे नीले आकाशको जलाकर चला जाता है और रातमें शुभ्र चन्द्रमा आकर उसको अपनी स्निग्ध चाँदनीसे स्नान करा देता है । अँधेरी रातमें जिस समय अगणित तारागणोंसे इस देशका आकाश झलमल झलमल करता है, तब मैं विस्मित आतंकसे देखा करता हूँ । वर्षा ऋतुमें जब काले काले बादल गुरु गंभीर गर्जना करते हुए प्रकाण्ड दैत्य-सैन्यकी भाँति इसके आकाशको छा लेते हैं, तब मैं निर्वाक् होकर खड़ा खड़ा देखता हूँ । इस देशका शिरोभूषण, आकाशको चूमनेवाला, नीले रंगका हिमालय अपने सिरके ऊपर

श्वेत तुषार-मुकुट धारण किये हुए, स्थिर भावसे खड़ा है। इसके विशाल नद-नदी मस्तभावसे फेना उठाते हुए बह रहे हैं और इस देशकी मरुभूमि विराट् स्वेच्छाचारके समान तप्त बालूसे खेला करती है।

सेल्यूकस—सच है, सम्राट्।

सिकन्दर—कहीं देखते हैं कि ताल-वन गर्वसे माथा ऊँचा किये खड़ा है, कहीं विराट् वट-वृक्ष अपनी स्नेहच्छाया चारों ओर फैला रहा है, कहीं मदमत्त मातङ्ग पर्वतकी तरह धीरे धीरे चल रहा है, कहीं विशाल अजगर अलस हिंसाके समान वक्र रेखामें पड़ा हुआ है, कहीं बड़े बड़े सींगोंवाला हरिण मुग्ध विस्मयके समान निर्जन वनमें शून्य दृष्टिसे देख रहा है और सबसे बड़ी बात यह है कि एक सौम्य, गौर और सुन्दर जाति इस देशका शासन कर रही है। उसके मुखपर शिशु-सारल्य है, देहमें वज्रकी शक्ति है, नेत्रोंमें सूर्य्यकी दीप्ति है और वक्षःस्थलमें आँधी जैसा साहस है। इस शौर्य्यको पराजय करनेमें आनन्द है। जानते हो, राजा पुरुको जब हमने कैद किया था तब उसने क्या कहा था?

सेल्यूकस—क्या कहा था सम्राट्?

सिकन्दर—मैंने उससे पूछा "तुम मुझसे किस प्रकारके प्रत्या-चरणकी आशा करते हो?" उसने निर्भीक निष्कम्प स्वरसे उत्तर दिया—"एक राजाके प्रति दूसरे राजाको जो आचरण उचित हो उसकी।" मैं दंग हो गया और मैंने जाना कि हाँ, यह एक जाति है! मैंने उसी समय उसको उसका राज्य लौटा दिया।

सेल्यूकस—सम्राट् महानुभाव हैं।

सिकन्दर—महानुभाव ? ऐसा उत्तर पानेपर भला उसके साथ और कौनसा व्यवहार किया जा सकता था ? महत्को देखकर एक प्रकारका उल्लास प्राप्त होता है । और मैं यहाँ कोई साम्राज्य स्थापन करने थोड़े ही आया हूँ । मैं शौकिया दिग्विजय करने आया हूँ और चाहता हूँ कि संसारमें कुछ कीर्ति छोड़ जाऊँ ।

सेल्यूकस—तो फिर सम्राट् इस दिग्विजयको असम्पूर्ण छोड़कर क्यों लौटे जा रहे हैं ?

सिकन्दर—इस दिग्विजयको सम्पूर्ण करनेके लिए नूतन यूनानी सेनाकी आवश्यकता है ।—कैसा आश्चर्य है सेनापति, सुदूर मैसिडनसे मैं अनेक राज्यों और जनपदोंको तिनकोंके समान पद-दलित करता हुआ आ रहा हूँ । मैंने आँधीकी भाँति आकर शत्रुओंकी बड़ी बड़ी सेनाओंको धूमराशिकी भाँति उड़ा दिया है । लगभग आधा एशिया मैसिडनकी विजयवाहिनीके वीर-पद-भारसे कम्पित हो उठा है । होनहारकी भाँति दुर्वार, हत्याकी भाँति कराल, दुर्भिक्षकी भाँति निष्ठुर, मैं आधे एशियाके वक्षःस्थलके ऊपर अपना रक्तसे रँगाहुआ विजय-शकट बिना किसी रोक-टोकके निकाल लाया हूँ । किन्तु बाधा यदि कहीं पाई है, तो पहले ही पहल इस सतलज नदीके किनारे ।

[चन्द्रगुप्तको पकड़े हुए एण्टीगोनसका प्रवेश ।]

सिकन्दर—क्या है एण्टीगोनस ? यह कौन है ?

एण्टीगोनस—भेदिया है हुजूर, भेदिया ।

सेल्यूकस—ऐं, यह क्या ?

सिकन्दर—भेदिया ?

एण्टीगोनस—हाँ, मैंने देखा कि यह एक शिविरके पास निर्जन स्थानमें सूखे तालपत्रपर कुछ लिख रहा है । मैंने उसे देखना

चाहा। इसने पत्र तो दिखा दिया, पर मैं उसे पढ़ न सका, इसी लिए सम्राटके सम्मुख ले आया हूँ।

सिकन्दर—क्या लिखते थे युवक, सच बोलो।

चन्द्रगुप्त—सच बोलूँगा राजाधिराज, सच बोलूँगा। भारत-वासियोंने झूठ बोलना अबतक भी नहीं सीखा है।

(सिकन्दरने एक बार सेल्यूकसकी ओर देखा, फिर चन्द्रगुप्तसे कहा—)

सिकन्दर—अच्छा। ठीक ठीक बोलो, क्या लिखते थे ?

चन्द्रगुप्त—मैं सम्राटका सेना-संचालन, व्यूह-रचनाप्रणाली, सामरिक नियम, ये सब बातें लगभग एक महीनेसे सीख रहा हूँ।

सिकन्दर—किसके पास ?

चन्द्रगुप्त—इन्हीं सेनापतिके पास।

सिकन्दर—क्या यह सच है सेल्यूकस ?

सेल्यूकस—सच है।

सिकन्दर—(चंद्रगुप्तसे) फिर ?

चन्द्रगुप्त—फिर जब मैंने यह सुना कि यूनानी सेना कल इस स्थानसे चली जायगी, तो जो कुछ मैंने सीखा था उसको मैं लिख ले रहा था।

सिकन्दर—किस अभिप्रायसे ?

चन्द्रगुप्त—सिकन्दरशाहके साथ युद्ध करनेके अभिप्रायसे नहीं।

सिकन्दर—तो ?

चन्द्रगुप्त—तो सुनिए सम्राट्, मैं मगध देशका राजपुत्र चन्द्रगुप्त हूँ। मेरे पिताका नाम था महापद्म। मेरे सौतेले भाई नन्दने सिंहासन-पर अधिकार कर लिया है और मुझे देशसे निकाल दिया है। मैं उसीका बदला लेनकी चिन्तामें इधर उधर फिर रहा हूँ।

सिकन्दर—फिर ?

चन्द्रगुप्त—फिर मैंने मैसिडनके नृपतिकी अद्भुत विजय-यात्राकी बात सुनी। सुना कि आधे एशियाको पद-दलित करके नद, नदी, और पर्वतोंको दुर्वार विक्रमद्वारा अतिक्रम करके उन्होंने भारतवर्षमें आकर आर्य-कुल-रवि महाराज पुरुको पराजित किया है। यह सुनकर सम्राट्, मेरी यह इच्छा हुई कि देख आऊँ, कैसा है वह पराक्रम, जिसकी भृकुटिको देखकर सारा एशिया महादेश उसके चरणोंपर लोटने लगा है। वह शक्ति कहाँ छिपी हुई है, जिसके संघातसे आर्योंका महावीर्य्य भी विचलित हो उठा है। इसी लिए यहाँ आकर मैं इन सेनापति महाशयसे शिक्षा प्राप्त कर रहा था। मेरी इच्छा अपने गये हुए राज्यको फिर लौटा लेनेकी है। केवल यही।

(सिकंदरने सेल्यूकसकी ओर देखा।)

सेल्यूकस—मैंने यह नहीं समझा था। युवकका चेहरा और बातचीत मुझे अच्छी लगी, इस लिए मैं सरल भावसे यूनानी युद्धकलाके सम्बन्धमें इस युवकसे बातचीत किया करता था। यह मैं नहीं समझता था कि यह विश्वास-घातक है।

एण्टीगोनस—कौन है विश्वास-घातक ?

सेल्यूकस—यही युवक।

एण्टीगोनस—यह युवक नहीं, तुम।

सेल्यूकस—एण्टीगोनस, मेरी उम्रका यदि तुम मान नहीं करते तो न सही, पर मेरी पदवीका तो तुम्हें मान करना चाहिए।

एण्टीगोनस—जानता हूँ कि तुम यूनानी सेनापति हो, तथापि तुम विश्वास-घातक हो।

सेल्यूकस—एण्टीगोनस ! (म्यानसे तलवार खींच ली।)

(एण्टीगोनसने भी जल्दीसे तलवार खींच ली और सेल्यूकसके सिरको लक्ष्य करके चला दी । उससे भी अधिक शीघ्रताके साथ चन्द्रगुप्तने अपनी तलवार निकालकर उस आघातको निवारण कर दिया । तब एण्टीगोनसने उसे छोड़कर चन्द्रगुप्तपर आक्रमण किया ।)

सिकंदर—ठहरो ।

(उसी क्षण एण्टीगोनसकी तलवार चन्द्रगुप्तकी चोटसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ।)

सिकंदर—एण्टीगोनस !

(एण्टीगोनसने लज्जासे सिर नीचा कर लिया ।)

सिकन्दर—तुम्हारी इस उद्धतताके कारण मैंने तुमको आज अपने राज्यसे निर्वासित किया । एक सामान्य सेनाध्यक्षकी यहाँ तक स्पर्धा !—मैं इस समयतक विस्मयसे अवाक् होकर देख रहा था । तुम्हारी इतनी स्पर्धा हो सकती है, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था ।—जाओ, इसी क्षण मैंने तुमको निर्वासित किया ।

(एण्टीगोनसका प्रस्थान ।)

सिकन्दर—और तुम्हारा अपराध सेल्यूकस, उतना बड़ा नहीं है । परन्तु भविष्यमें ध्यान रहे कि यूनानके सम्राटके सम्मुख यूनानी सेनापतिका इस तरह लाल लाल आँखें दिखाना शोभा नहीं पाता—और युवक !

चन्द्रगुप्त—सम्राट् !

सिकन्दर—तुमको यदि कैद करूँ तो ?

चन्द्रगुप्त—किस अपराधमें सम्राट् ?

सिकन्दर—हमारे पड़ावमें शत्रुके भेदिया बनकर तुमने प्रवेश किया, इस अपराधमें ।

चन्द्रगुप्त—इस अपराधमें ? मैं समझता था कि सिकन्दर महावीर हैं; परन्तु देखता हूँ कि वे इतने डरपोक हैं कि एक गृह-हीन निराश्रय हिन्दू राजपुत्र उनके पास विद्यार्थी बनकर आया, उससे भी इतना भयभीत हो गये । यह मैंने कभी नहीं समझा था कि सिकन्दरशाह इतने कापुरुष हैं ।

सिकन्दर—सेल्यूकस, क़ैद करो ।

चन्द्रगुप्त—सम्राट्, मुझे बिना जानसे मार डाले आप क़ैद नहीं कर सकेंगे । (तलवार म्यानसे बाहर निकाल ली ।)

सिकन्दर—(सोल्लास) खूब ! जाओ वीर, हम तुमको क़ैद नहीं करेंगे । हम केवल परीक्षा करते थे । तुम निर्भय घरको लौट जाओ । और हम एक भविष्यद्वाणी करते हैं, उसको याद रक्खो । तुम एक दिन अपने गये हुए राज्यका उद्धार करोगे और दुर्जय दिग्विजयी होओगे ।—जाओ वीर, तुम मुक्त हो ।

द्वितीय दृश्य ।

स्थान—श्मशान भूमि ।

समय—प्रभात ।

[अकेला चाणक्य खड़ा है ।]

चाणक्य—इस जलप्राय भूमिके ऊपर धुएँकी एक कुण्डली उठ रही है । सड़े हुए हाड़ोंकी दुर्गन्धिसे मानो हवाको भी साँस लेनेमें कठिनाई हो रही है । कुत्तोंके भौंकनेका विकट भों भों शब्द इस निर्जन प्रान्तकी स्तब्धताको भंग कर रहा है ।—प्रभातके सर्वांगमें घाव लग रहे हैं । पीब पड़ गया है । हे सुन्दरी बीभत्सता, तुम इतनी सुन्दरी हो, तभी तो मैं प्रतिदिन सवेरे ही गाँव छोड़कर तुम्हारी इस

कुत्सितता—जघन्यतामें स्नान करने दौड़ आता हूँ। प्यारी, तुमने मुझे बहुत कुछ सिखाया है। तुमने मुझे संसारसे घृणा करना, क्षमताको तुच्छ समझना, ईश्वरके अत्याचारके सामने तनकर, छाती खोलकर, खड़ा होना सिखाया है। हे सुन्दरी, मुझे संसारसे और भी दूर ले जाओ—जितनी दूर ले जा सको। भले ही वह नरक हो, पर संसारसे दूर हो।

[दो व्यक्ति बातें करते हुए आते हैं।]

१ व्यक्ति—तो कात्यायन नये मंत्री हुए हैं ?

२ व्यक्ति—कात्यायन नहीं, शाकताल (शकटाल)।

१ व्यक्ति—उसीका नाम कात्यायन है। शाकताल क्या किसीका नाम होता है ? शाक और ताल दोनों ही खाद्य पदार्थ हैं। किन्तु मैं सोचता हूँ कि—

२ व्यक्ति—क्या ?

१ व्यक्ति—महाराजने उसको कारागारसे आखिर मुक्त कर दिया, यही यथेष्ट आश्चर्य था, उसके ऊपर अब उसको बना दिया मंत्री ! पहले तो उसके सातों लड़कोंकी हत्या की, फिर यह—बस, हद्द कर दी ! हद्द !

२ व्यक्ति—राजाका ख्याल ही तो ठहरा।

चाणक्य—(दूरसे) " विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च। "

१ व्यक्ति—वह कौन है ?

२ व्यक्ति—चाणक्य ब्राह्मण।

१ व्यक्ति—मनुष्य है ?

२ व्यक्ति—सुनते तो हैं कि मनुष्य है; परन्तु विश्वास नहीं होता।

१ व्यक्ति—चलो यहाँसे चलें,—अपशकुन हुआ ।

२ व्यक्ति—चलो, उसे देखते ही भय लगता है ।

(दोनोंका जल्दीसे प्रस्थान ।)

चाणक्य—नीचकी आज यह स्पर्धा कि ब्राह्मणको प्रणाम करनेके लिए भी उसका हाथ नहीं उठता! परन्तु एक दिन था जब कि—अच्छा, इन बातोंको जाने दो—जाओ। हमारी छाया तुम्हारे ऊपर न पड़ने पावे। हमारे श्वासमें विष मिला है, हम दुर्भिक्ष हैं, हम महामारी हैं।

[दूरसे कात्यायनका प्रवेश ।]

चाणक्य—हमें दरिद्री, नीच, निःसहाय ब्राह्मण समझकर ये तुच्छ कुशांकुर भी माथा ऊँचा किये खड़े हैं। ठहरो, हम इन कुशोंको मूलसे उखाड़ देंगे। (कुशोंको उखाड़कर हवामें उड़ाने लगता है) और लो, और लो, और ब्राह्मणके नंगे पैरोंमें चुभोगे?

कात्यायन—(आगे बढ़कर) नमस्कार।

चाणक्य—तुम कौन हो?

कात्यायन—मैं महाराज नन्दका मंत्री कात्यायन हूँ।

चाणक्य—महाराज नन्दके मंत्री हैं आप! हट जाओ सामनेसे।

कात्यायन—यह क्यों? हमने क्या अपराध किया है?

चाणक्य—नहीं भाई, तुम कैसे अपराध करोगे! तुमने कोई अपराध नहीं किया। राजा कभी कोई अपराध नहीं करता। ईश्वर कोई अपराध नहीं करता। जो कुछ अपराध है, वह हमारा है। महाराजने हमारी ब्राह्मणोत्तर[1] सम्पत्ति जब्त कर ली, यह भी हमारा ही अपराध है! ईश्वरने हमारे गृहको शून्य कर दिया, हमारी गृहलक्ष्मीको बलपूर्वक असमय उठा लिया, यह भी हमारा ही अपराध है! डाकुओंने हमारी कन्याका अपहरण कर लिया, यह भी हमारा ही अपराध है! हमें दीन

१ ब्राह्मणको दान दी हुई निष्कर (बे-लगान) जमीन।

दरिद्र समझ करके आज ये कुशांकुर भी माथा उठाये खड़े हैं ! (कुशांकुरोंकी तरफ़ देखकर) क्यों ? और पैरोंमें चुभोगे ? चुभो न, चुभो ! अब क्यों नहीं चुभते ?

कात्यायन—चाणक्य, मैं आज तुम्हारे पास आया हूँ।

चाणक्य—क्यों मन्त्री महोदय ? अब और तो कुछ मेरे पास है ही नहीं, केवल एक यही झोपड़ी है। यही सूनी झोपड़ी। यदि इच्छा हो तो ले जाओ, इसे भी छीन लो, इसमें भी आग लगा दो। आह ! यदि आज ब्राह्मणका वह प्रताप होता !

कात्यायन—वह प्रताप है क्यों नहीं ? पाणिनिने कहा है—

चाणक्य—(अपने आप) यह सब अपना ही दोष है। सारी जातिकी समस्त विद्या, यश और क्षमताको केवल अपना ही कर लेनेसे क्या कोई स्वयं बढ़ सकता है ? शरीरको भूखा रखनेसे क्या मस्तिष्क बलवान् हो सकता है ? यह कहीं सह्य हो सकता है ? नहीं। उसीसे तो यह पतन हुआ।—सुन्दरी ! अच्छा तुम्हीं कहो, क्या सह्य हो सकता है ? नहीं तो इतना अधःपतन कैसे होता ?

कात्यायन—यह दूसरा कौन है ? आप किससे यह बातचीत कर रह हैं ?

चाणक्य—ओह कितना अधःपतन है ! पर्वतके शिखरसे एकदम इतने गहरे गढ़ेमें ! आज ब्राह्मणको एक चूहेकी भाँति घरके एक अँधेरे बिलसे दूसरे अँधेरे बिलमें घुसनेके लिए माथा झुकाकर चलना पड़ता है। आज ब्राह्मण दूसरोंके डाले हुए दो मुट्ठी चावलोंके लिए मारा मारा फिरता है। लज्जा भी नहीं आती ! एक दिन जिसके तीन धागे देखकर देवराज इन्द्र भी ऐरावतके ऊपरसे उतर पड़ते थे, एक दिन जिसके पदाघातको स्वयं नारायणने सगर्व अपने वक्षःस्थलमें धारण

किया था, आज वही उपवीतसार ब्राह्मण मुट्ठीभर भिक्षाके लिए लालायित हो रहा है ! ओह, कितना अध:पतन है !

कात्यायन--ब्राह्मण गिर गये हैं, तो फिर उठ सकते हैं ।

चाणक्य—असम्भव है । उनकी वह क्षमता चली गई है—क्यों प्यारी, नहीं चली गई है ?

कात्यायन—क्यों ? अब भी ब्राह्मण ही मन्त्री होते हैं, ब्राह्मण ही पुरोहित होते हैं, ब्राह्मण ही विदूषक होते हैं और ब्राह्मण ही व्यवस्था देते हैं । आज भी इस गौरवर्ण ब्राह्मण जातिने स्वर्णसूत्रकी भाँति समस्त समाजको गूँथ रक्खा है ।

चाणक्य—किन्तु रात्रि सन्निकट है । वह देखो ।

(दूरीपर इशारा करता है ।)

कात्यायन—यदि ब्राह्मणने अपने हाथों अपना प्रभुत्व खोया है, तो यह ब्राह्मण ही उसका उद्धार करेगा । और ब्राह्मण, मैं आज इसी उद्देश्यसे तुम्हारे पास आया हूँ ।

चाणक्य—कैसे ?

कात्यायन—तुमको महाराजके मातामहके श्राद्धमें पुरोहिताई करनी होगी ।

चाणक्य—(सहसा) मन्त्री महाशय, यह सच है कि मैं एक दीन दरिद्र असहाय ब्राह्मण हूँ, किसी दिन खानेको मिलता है और किसी दिन नहीं भी मिलता; तथापि महाराजकी पुरोहिताई मैं नहीं करूँगा ।—मरनेपर भी नहीं करूँगा । मैं क्षत्रियका दासत्व नहीं करूँगा ।

कात्यायन—सुनो ब्राह्मण—

चाणक्य—नहीं, नहीं—अरे यह क्या अत्याचार है ! क्या मैं अपनी झोपड़ीमें बैठकर रो भी नहीं सकूँगा ?

कात्यायन—पुरुषोंका रोना अच्छा नहीं लगता।

चाणक्य—यह तो ठीक है, पुरुषोंका रोना अच्छा नहीं लगता। (कुछ सोचकर) परन्तु क्या करूँ मन्त्री महाशय, लगातार एकके बाद एक आनेवाले भाग्यके फेर मेरा कुछ भी न बिगाड़ सके थे; परन्तु अन्तमें कन्याके अपहरणने मेरी रीढ़ तोड़ डाली है।

कात्यायन—(अर्ध स्वगत) इधर आप इतने कोमल प्रकृतिके हैं!

चाणक्य—मन्त्री महाशय, मैं एक दिन किसी कामके लिए बाहर गया था। वहाँसे लौटकर रात्रिको मैंने अपने घर देखा कि मेरा नौकर भूमिपर बेहोश पड़ा हुआ है और कन्याकी शय्या शून्य है। उस समय मेरी रगोंमें गर्म खून बहने लगा, आँखोंके सामने अँधेरा छा गया, पृथ्वीसे एक तप्त वाष्प उठकर आकाशमें छाने लगा। तदनन्तर उन्मत्तकी भाँति मैं गलियोंमें 'बेटी' 'बेटी' चिल्लाता हुआ घूमने लगा। पासके वनमें चिड़ियाँ कलरव कर उठीं। नदीके किनारे खड़ा होकर उस पारको लक्ष्य करके पुकारने लगा। परन्तु उस अन्धकारमें अपने दोनों तटोंके बीच केवल काली नदी बहती गई, और गर्जन करती गई। कोई पता न चला, मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा।

कात्यायन—तुम पण्डित होकर भी इतने अधीर होते हो?

चाणक्य—अधीर? इच्छा होती है कि इतना रोऊँ और चिल्ला-चिल्लाकर रोऊ कि अपने आँसुओंके जल-प्रबाहमें पृथ्वीको डुबा दूँ—चूर चूर करके बहा दूँ। किन्तु आँसुओंका सोता सूख गया है। बीच बीचमें ऐसा माल्रम होता है कि आँसू जमकर भीतर रह गये हैं। अविचार और अत्याचारने ईश्वरको भी खा लिया है और ढँक लिया है, इसीसे मैं उसे नहीं देख पाता।

कात्यायन—तुम ईश्वरको फिर देख सकोगे; मेघ छँट जायँगे । अकेले बैठे व्यर्थ ही चिन्तित रहना छोड़ दो, नये उद्यमसे छातीको कस लो और कर्मके स्रोतमें अपनेको बहा दो । इस कार्यमय संसारमें खाली बैठे रहनेसे काम नहीं चलता ।

चाणक्य—हाँ यह तो ठीक है, खाली बैठे रहनेसे काम नहीं चलता ।

कात्यायन—सुख और दुःखमें मनुष्यका जीवन है । आलोक और अन्धकारमें समयका विकाश है । क्या अकेले तुम्हींने दुःख झेला है ? मेरे दुःखको जानते हो ? मैंने अपने सातों बेटोंको इसी राजाकी आज्ञासे अपनी आँखोंके सम्मुख बीना खाये-पीये मरते हुए देखा है ।

चाणक्य—हैं ! यह क्या !—इतनेपर भी तुम उसके मंत्री हो ?

कात्यायन—हाँ चाणक्य ।—बदला लेनेके लिए केवल मैं ही बच रहा हूँ—अनाहार—भूखा—प्यासा रहनेपर भी नहीं मरा ! बदला लेनेके लिए ही मैंने यह मंत्रित्व ग्रहण किया है ।—चाणक्य, तुम मेरी सहायता करो ।

चाणक्य—ब्राह्मणके ऊपर सारे अत्याचार होते हैं !—ऐं प्यारी, तुम इतनी तीव्र दृष्टिसे क्यों देख रही हो ? क्या आज्ञा है ?

कात्यायन—आओ, ब्राह्मणके लुप्त तेजका हम लोग पुनरुद्धार करें । मैं राजाका मंत्री हूँ और तुम बनो राजाके पुरोहित । आज हम दो ब्राह्मण मिल जायँ और हमपर जो अन्याय हुआ है उसका बदला लेवें । जब तक भारत भारत है, तब तक ब्राह्मण ब्राह्मण है । तैयार तो हो जाओ भाई ।

चाणक्य—(मानो कान लगाकर कुछ सुना) अच्छा !—जब तुम्हारी आज्ञा है तो मैंने पौरोहित्य स्वीकार किया । मंत्री महाशय, मैं यह

जानता हूँ कि सब जायगा ! इस अविश्वासी बौद्ध-युगने जान लिया है, ब्राह्मणकी शठता, वंचकता और धोखेबाजीको पकड़ लिया है ! सब कुछ जान लिया है, इसीसे यह युग ब्राह्मणका गला घोंट रहा है ! वह देखो बाढ़ आ रही है ! जायगा, ब्राह्मणका प्रभुत्व जानेको बैठा है—जायगा । हम रक्षा नहीं कर सकते, उसे बचा नहीं सकते । तो भी प्रलयके पहले यह कलियुगका ब्राह्मण एक बार बारह सूर्य्यकी भाँति आकाशको जलाता हुआ चला जायगा ! चलो, चलता हूँ ।

(दोनों जाते हैं ।)

तृतीय दृश्य ।

स्थान—महाराज नन्दका प्रमोद उद्यान ।

समय—रात्रि ।

[महाराज नन्द, और पारिषदगण (दरबारी) । नाचनेवाली नर्तकियोंका नाचना और गाना ।]

गजल ।

दिली दोस्त तुम ही हो प्राणोंसे प्यारे,
तुम्हें प्यार करती हैं कहतीं पुकारे ॥
तुम्हारे ही अनुरागमें मस्त हैं हम,
इसीसे निकट दौड़ आतीं तुम्हारे ॥
हमें मोहिनी वह हँसी सिर्फ तुम दो,
तुम्हें देंगी हम अश्रु-मुक्ता हमारे ॥
अहो मित्र, तुम देख लो सिर्फ इतना,
तुम्हें किस तरह हम करें प्यार प्यारे ॥
बनाकर चमेलीका अनमोल गजरा,
समर्पण करेंगी चरणमें तुम्हारे ॥

उसे हँसके पहनो गलेमें, तो हम भी—
बनें धन्य मीठी हँसी वह निहारे ॥
कृपाकर कभी यार बंसी बजाना,
उसे सुननेकी चाह हमको है प्यारे ॥
मधुर मोहिनी वे मुरलियाकी तानें,
हमें खूब रुचती हैं साजन हमारे ॥
हमारे प्रभू और सर्वस्व तुम हो,
तुम्हारी ही दासी हैं, हम, सब बिसारे ॥
अजी तुम हो ब्रजराज, संसार जाने,
तो ब्रजवासिनी हम भी, आँखोंके तारे ॥
हमें चाहे चाहो, न चाहो, न इसकी—
हमें कुछ है पर्वा, तुम्हें चाहें, प्यारे ॥

[चाणक्यका प्रवेश ।]

चाणक्य—महाराज !

१ पारिषद—अरे यह कौन आ गया !

२ पारिषद—ए चाँद, तुम किस आकाशसे उतरे हो ?

३ पारिषद—क्या तुम नाचना जानते हो ?

नन्द—तुम कौन हो ?

चाणक्य—मैं ब्राह्मण हूँ।

१ पारिषद—जाओ, यहाँ कुछ नहीं मिलेगा ।

२ पारिषद—स्त्री, गौ, ब्राह्मण इनसे हम कुछ नहीं कहते, चलो हटो।

३ पारिषद—ब्राह्मणकी भी क्या ही अहदी जाति है !

नन्द—तुम यहाँ इस समय हमारे पास क्यों आये हो ?

चाणक्य—महाराज, मैं आपके मातामहके श्राद्धमें पुरोहिताई करने आया था, कुछ भीख माँगने नहीं आया था—

नन्द—तो तुमसे भी कौन यहाँ आनेकी प्रार्थना करने गया था ?

चाणक्य—तुम्हारा मन्त्री।

नन्द—मन्त्री तुम्हें बुला लाया है तो जाओ, उसीके पास जाओ।

चाणक्य—तुम्हारे सालेने हमारा अपमान किया है—

१ पारिषद—वे तो करेंगे ही।

२ पारिषद—सभी साले अपमान करते हैं।

३ पारिषद—सालोंको सात ख़ून माफ़ हैं। उनकी बात मत करो।

चाणक्य—(पृथ्वीपर जोरसे पैरोंको पटककर) चुप रहो, कुत्तो!

(पारिषद लोग भयभीत होकर स्तब्ध हो रहते हैं।)

नन्द—उनके द्वारा अपमानित होनेसे क्या हुआ ब्राह्मणदेवता! जानते ही हो, वे मगध-सम्राटके साले हैं।

[वाचालका प्रवेश।]

वाचाल—अरे ब्राह्मण, मुझे तूने मामूली आदमी समझ रक्खा है! सुन, मैं महाराजका साला हूँ; महाराजके पिता मेरे पिताके समधी हैं; महाराज मेरे बहनोई हैं; और महाराजके लड़के मेरे भानजे हैं, मुझे तूने मामूली आदमी समझ रक्खा है, ब्राह्मण!

नन्द—जाओ, यहाँसे चले जाओ, यहाँ हम ब्राह्मणकी शिकायत सुनने नहीं आये हैं।

चाणक्य—महाराज, सुनोगे ही क्यों? आज ब्राह्मण वह ब्राह्मण नहीं है। इसीसे आज क्षत्रिय सहजमें ही उसकी सम्पत्ति निःशंक होकर लूटता है और निःशंक होकर उसे लाल लाल आँखें दिखाता है। यदि आज ब्राह्मणका वह तेज होता, तो अपने सामने उसका क्रोधसे लाल मुख देखते ही तुम सिंहासनसमेत मिट्टीमें मिल जाते—पृथ्वीमें धँस जाते। किन्तु महाराज, निश्चय जानिए अब भी वह प्रताप बिल्कुल लुप्त नहीं हो गया है!

वाचाल—अच्छा ब्राह्मणका प्रताप एक बार देखें और तू भी एक बार देख ले कि महाराजके सालेका प्रताप कैसा होता है।

चाणक्य—देखूँगा—और महाराज, तुम भी देखोगे—यदि इसका प्रतिविधान न करोगे।

नन्द—ऐ भिखमंगे, तू यहाँ खड़ा हुआ लाल लाल आँखें दिखाता है! जा, दूर हो यहाँसे।

चाणक्य—ऐ कलिकालके ब्राह्मण! कान खोलके सुन। क्षत्रिय ब्राह्मणसे कहता है कि 'दूर हो यहाँसे,' तो भी आँधी नहीं उठती, अग्निवृष्टि नहीं होती और न पृथ्वी ही काँप उठती है! सब स्थिर है!—कैसा आश्चर्य है!

नन्द—इसे गलेमें हाथ देकर बाहर निकाल दो।

चाणक्य—भगवति वसुन्धरे! दो टूक हो जाओ!—अरे ब्राह्मण! जड़तुल्य खड़ा हुआ और क्या देख रहा है! संसारकी हँसीका पात्र बनकर ऐश्वर्यके द्वारपर भिक्षा माँगते फिरते हुए तुझे लज्जा नहीं आती?—यदि शक्ति हो तो उठ—कपिलके तेजकी अग्निवृष्टि करके नीचका घमण्ड चूर कर दे। और यदि यह नहीं हो सकता हो, तो ए क्षुद्र! ओ घृणित! अरे पददलित! अरे महत्त्वके कंकाल! अब उजेलेमें मुख न दिखला, रसातलको चला जा।

नन्द—क्या हमलोग यहाँप एक पागलका प्रलाप सुनने आये हैं!—वाचाल, इसको बाहर निकाल दो।

वाचाल—(चाणक्यकी चोटी पकड़कर खींचते हुए) निकल जा भिक्षुक!

चाणक्य—क्या!—अच्छा जाता हूँ—जाता हूँ। किन्तु जानेके पूर्व कहे जाता हूँ कि महाराज नन्द, तुम इसी कलिकालमें फिर एक बार

क्षीण और नष्टप्राय ब्राह्मणके प्रतापको देखोगे। यदि नन्दवंशका नाश न करूँ, तो मैं चणककी सन्तान नहीं। अब तुम्हारे रक्तमें रँगे हुए हाथोंसे ही इस चोटीको बाँधूँगा। तब तक यह चोटी खुली रहेगी। यही प्रतिज्ञा करके मैं जाता हूँ, यह याद रखिएगा महाराज। और यह मेरी भविष्यद्वाणी है कि एक दिन इसी भिक्षुकके पैरोंपर पड़कर तुम्हें अपने प्राणोंकी भिक्षा माँगनी होगी, परन्तु मैं वह भिक्षा तुम्हें न दूँगा। उसी दिन तुम इस ब्राह्मणकी तपस्याकी शक्ति, ब्राह्मणकी प्रतिभाका प्रभाव, ब्राह्मणकी प्रतिज्ञाका बल, ब्राह्मणके अभिशापका तेज, ब्राह्मणके क्रोधका विक्रम, और ब्राह्मणके दुर्जय प्रतापको देखोगे।

(प्रस्थान।)

नन्द—यह कौन था ? और बात क्या हुई थी ?

वाचाल—और क्या होता—यह मूर्ख जानवर पुरोहिताई करने आया था और इधर मैं एक दूसरे पुरोहितको ले आया था। मैंने इससे कहा—तू उठ जा। यह नहीं उठा, तब मैंने गर्दना देकर निकाल दिया। मेरा जो अपराध है, वह यही है।

नन्द—तुमने ब्राह्मणको गर्दना देकर क्यों निकाला ?

वाचाल—मैं महाराजका साला हूँ—

१ पारिषद—और उसपर तुर्रा यह कि महाराज इनके बहनोई हैं।

२ पारिषद—और इनके बाप महाराजके ससुर होते हैं।

३ पारिषद—अच्छा किया, खूब किया।

नन्द—सारा मजा किरकिरा कर दिया—रहने दो, बस !

१ पारिषद—बुराई क्या हुई, एक नया तमाशा हो गया।

२ पारिषद—भाई उसने गाया खूब !

१ पारिषद—जो हो, श्राद्धमें इतना आनन्द कभी नहीं देखा। हाँ, लड़कीके विवाहमें तो इस प्रकारका नाचना गाना हो जाता है।

२ पारिषद—वह भी एक प्रकारका श्राद्ध ही है।

१ पारिषद—सो कैसे ?

२ पारिषद—श्राद्ध होते हैं तीन प्रकारके। यथा—एक बापका श्राद्ध—इसको कहते हैं श्राद्ध; दूसरा लड़कीका श्राद्ध—इसको कहते हैं विवाह; तीसरा रुपयोंका श्राद्ध;—इसको कहते हैं मुकद्दमा !

३ पारिषद—और भूतके बापका श्राद्ध—उसको क्या कहते हैं ?

४ पारिषद—यही जो यहाँ हो रहा है।

[मुराको साथ लिये हुए कात्यायनका प्रवेश ।]

नन्द—यह और कौन है ?—ओह !—यह यहाँ कैसे ?

कात्यायन—महाराजने आज्ञा दी थी कि बिना विलम्ब—

नन्द—तो भी—क्या इस जगह तुम्हें लाना चाहिए था ?—यह तो प्रमोद-उद्यान है ! कुछ तो भद्रताका खयाल रक्खा होता।

मुरा—वत्स, तेरे मुखसे यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुई।

नन्द—तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए हम कोई कार्य करेंगे, इस लिए हमने तुम्हें यहाँ नहीं बुलाया था, किन्तु—मंत्री, यह स्थान और राज-कार्य—तुम बड़े अविवेकी हो।

कात्यायन—आज्ञा हो, तो इसे फिर लौटा ले जाऊँ।

२ पारिषद—अजी मंत्री महाशय, तुमने यह वैसा ही किया—

१ पारिषद—कैसा भाई ?

२ पारिषद—एक आदमी पालकी चढ़कर गया, देखा कि जेबमें पैसा नहीं है—भाड़ा नहीं दिया जा सकता। अन्तमें उसने कहारोंसे कहा—भाई, हमारे पास तो पैसा नहीं है; परन्तु तुम लोग ग़रीब

आदमी हो—तुम्हारा नुकसान कैसे करें ?—अच्छा तो जहाँसे हमें लाये हो वहाँ ही पहुँचा आओ—न होगा हम पैदल ही चले आयँगे।

३ पारिषद—एक आदमीने सचमुच ही ऐसा किया था। उसने मजदूरोंसे कुआँ खुदाया। उन्होंने जितनी मजदूरी माँगी उतनी उसने देनी नहीं चाही, कहा—अगर नहीं मानते, तो जो तुमने खोदा है उसको पाट दो, हम दूसरे मजदूरोंसे अपना कुआँ खुदा लेंगे।

कात्यायन—कहिए महाराज, जहाँसे इसको लाया हूँ वहीं पहुँचा आऊँ ?

नन्द—नहीं, अब तो तुम ले ही आये हो—(मुरासे) सुनो मा, तुम्हारा पुत्र चन्द्रगुप्त जीवित है ?

मुरा—जीवित है ? कहाँ है ? कहाँ है वह ?

नन्द—यही जाननेके लिए तो हमने तुमको बुलवाया है। तुम जानती हो कि वह कहाँ है ?

मुरा—बेटा, मैं नहीं जानती।

नन्द—नहीं, तुम जानती हो। बतलाओ वह कहाँ है ? नहीं तो तुम जानती हो नन्दको ?

मुरा—जानती हूँ। नन्दको न जानूँगी ? मैंने उसे गोदमें लेकर आदमी बनाया है, छातीपर लिटाकर सुलाया है।

नन्द—हाँ, इस बातका गौरव तुम कर सकती हो।—परन्तु इस समय बतलाओ, चन्द्रगुप्त कहाँ है ?

मुरा—मैं नहीं जानती।

नन्द—जानती हो। बोलो। नहीं तो—

मुरा—हमें मार डालोगे ? मार डालो—परन्तु इस समय नहीं। मैं मरनेके पहले एक बार चन्द्रगुप्तको देखना चाहती हूँ।—एक बार—केवल एक बार—

नन्द—नहीं, तुमको वध नहीं करेंगे ।—इतने शीघ्र तुमको समाप्त कर देनेसे काम न चलेगा । तुमको आजीवन कारागारमें बन्दी रक्खूँगा । भूखकी अग्निसे तुमको तिल तिल करके जलाऊँगा ।

मुरा—नहीं, तुम इतने निष्ठुर नहीं हो सकते । मैं तुम्हारी मा हूँ ।

नन्द—हाँ, शूद्राणी होने पर भी मा ?—पिताकी दासी होनेसे यह स्पर्धा कि महाराजकी मा होना चाहती हो !

मुरा—ओह ! (सिर झुका लिया ।)

२ पारिषद—एक कहानी याद आ गई—एक—

नन्द—चुप रहो ।—महाराजकी मा होना चाहती हो—शूद्राणी मा ?

मुरा—नहीं, मैं महाराजकी मा होना नहीं चाहती । महाराज, तुम चिर दिन महाराज बने रहो और मेरा चन्द्रगुप्त भिक्षुक बना रहे । हाँ केवल जीवित रहे । मैं केवल एक बार उसको देखना चाहती हूँ । एक बार छातीसे लगाकर रोना चाहती हूँ ।—मैं चन्द्रगुप्तकी मा हूँ, यही मेरा परम गौरव है । इससे बढ़कर गौरव मैं नहीं चाहती । मैं महाराजकी मा नहीं होना चाहती ।

नन्द—अब भी बता दो कि चन्द्रगुप्त कहाँ है । तुम जानती हो ।

मुरा—यदि जानती भी होती, तो न बतलाती । महाराज नन्द, क्या तुम यह समझते हो कि मा अपनी प्राणरक्षाके लिए अपने बच्चेको बाघके मुखमें छोड़ देगी ?—अरे मूढ़, मा शब्दका अर्थ तू नहीं जानता ।

नन्द—बताओगी नहीं ? ठीक ! हमने सुना है कि वह हमारे विपक्षमें विद्रोह करनेवाला है । सेना संग्रह कर रहा है ।

मुरा—हे भगवन्! यह बात सच हो, जिससे कि चन्द्रगुप्त अपनी माताके अपमानका बदला ले सके।

नन्द—ले जाओ इसको कारागारमें।

वाचाल—चलो। (केश पकड़कर खींचता है।)

(पारिषद हँसते हैं, साथ ही साथ नन्द भी हँसने लगता है।)

मुरा—यहाँ तक!—महाराज नन्द, तुम अपनी माताका यह अपमान उपभोग कर रहे हो! तुम भी हँसते हो!—नहीं, मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ, मैंने तुम्हें दूध नहीं पिलाया है। किसी राक्षसीने तुमको रक्त पिलाकर मनुष्य किया है। यदि ऐसा नहीं होता, तो क्षत्रिय होकर भी महाराज, तुम—नहीं, वर्तमान कालमें यदि क्षत्रियोंके ऐसे आचरण हैं, तो मैं चाहती हूँ कि जन्म जन्म शूद्राणी होकर ही जन्म ग्रहण करूँ।

१ पारिषद—वाह, कहा खूब!

२ पारिषद—ठीक है! कहने दो।

३ पारिषद—महाराज, शर्माते क्यों हैं!

मुरा—महाराज नन्द, मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ; परन्तु मैं एक दीन दुर्बल निःसहाय स्त्री तो हूँ। स्त्रीकी लाञ्छना!—दुर्बलके ऊपर अत्याचार!—स्त्री तो सह सकती है, किन्तु यह जाने रहो कि इसको धर्म नहीं सह सकता।

वाचाल—आओ, यहाँ हम धर्मकी कहानी सुनने नहीं बैठे हैं, आओ।

(यह कहकर वाचालने उसकी गर्दन पकड़ी।)

नन्द—अब भी बतलाओ कि चन्द्रगुप्त कहाँ है, नहीं तो—

[नंगी तलवार लिये हुए चन्द्रगुप्तका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—यह चन्द्रगुप्त तुम्हारे सामने है। अधम! (वाचालको लात मारकर नीचे गिरा देता है) मा, तुम्हारा यह अपमान!—चन्द्रगुप्तके जीते हुए तुम्हारा यह अपमान! माता मेरी!

मुरा—मेरे वत्स ! (चन्द्रगुप्तके गलेसे लिपट जाती है।)

चन्द्रगुप्त—भीरु ! पाखंडी ! कापुरुष ! इसका फल पाओगे।—आओ माता। (मुराके साथ प्रस्थान।)

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान—मलयराज्यमें चन्द्रकेतुका महल।

समय—सायंकाल।

[चन्द्रगुप्त और चन्द्रकेतु।]

चन्द्रकेतु—यह घर आपका ही घर है। मैं आपका अनुचर भाई हूँ। महाराज, मेरा विश्वास कीजिए। महाराजके लिए मेरी यह पहाड़ी सेना प्राण देनेको तैय्यार है।

चन्द्रगुप्त—मैं इस अशिक्षित सेनाको यूनानी पद्धतिसे शिक्षित करूँगा। इस पहाड़ी साहसको विज्ञानके कारखानेमें गलाकर ठोक-पीटकर ऐसा गढ़कर तैय्यार करूँगा कि इसके सामने अकेले मगधकी क्या कथा, सारा भारतवर्ष इसका लोहा मानेगा।

चन्द्रकेतु—परन्तु सुनता हूँ कि नन्दका मंत्री बहुत ही कूटनीतिज्ञ, बहुत ही बुद्धिमान् है।

चन्द्रगुप्त—यह मैं जानता हूँ। मेरे पक्षमें भी नन्दका पुराना मंत्री कात्यायन है और मैंने उसे कौशली पंडित चाणक्यको बुला लानेके लिए भेजा है।

चन्द्रकेतु—यह चाणक्य कौन है?

चन्द्रगुप्त—सुना है कि वह एक अतिबुद्धिमान्, एकनिष्ठ और विचक्षण ब्राह्मण है। नन्दके प्रति उसका क्रोध बहुत दिनोंसे सुलग

रहा है और इस समय तो वह हवा पाकर और भी भभक उठा है। माल्म होता है कि वह जादू जानता है।

चन्द्रकेतु—यह कैसे ?

चन्द्रगुप्त—सुनते हैं कि वह हवासे बातें करता है। अग्निके साथ मंत्रणा करता है। उसकी क्रुद्ध दृष्टिसे तिनके जल उठकर भस्म हो जाते हैं। वह अकेला है। संसारमें उसका कोई नहीं है।

चन्द्रकेतु—किन्तु ऐसा आदमी बड़ा भयानक होता है।

चन्द्रगुप्त—इस समय भयानक ही मनुष्य चाहिए। चन्द्रकेतु, क्या मैं तुम्हारा भरोसा करूँ ?

चन्द्रकेतु—महाराज, जब मैंने आपको एक बार मगधका न्याय्य महाराज कह कर पुकारा, जब एक बार भाई कहकर आलिंगन किया, तब महाराज, राजभक्त चन्द्रकेतुको आप अपने लिए प्राणतक न्योछावर करनेके लिए सदैव प्रस्तुत समझिए।

चन्द्रगुप्त—भाई! (आलिंगन) तो अब और कोई चिन्ता नहीं है।

नेपथ्यमें—चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त—आता हूँ मा।—चलो चन्द्रकेतु, माताका आशीर्वाद ग्रहण करें। (दोनोंका प्रस्थान।)

[छायाका प्रवेश।]

छाया—ये क्या साक्षात् इन्द्र अवतीर्ण हुए थे! इनका दर्शन पूर्ण चन्द्रमाका उदय है। इनका स्वर रणवाद्य है। दादाको जिस समय इन्होंने आलिंगन किया, उस समय ऐसा माल्म हुआ, मानो शरद ऋतुके मेघको सूर्य्यकी किरणोंने आकर घेर लिया हो। ऐसे चले गये, मानो एक मलयोच्छ्वास हो, मलय-वायुका झकोरा हो। आया और चला गया—सौरभ छोड़ गया। (गाती है।)

ठुमरी आसावरी ।

चाचर ।

तुम आओ वसन्त सुहाए, किरण-रंग-रंगीन पंख उठाए ।
ले आओ नित नूतन गायन, फूल-पात मनभाए ।
मंजु मंजरी-पुंज मनोहर, कुंज-वहार बढ़ाए ॥ किरण० ॥
प्रेमके फंद परी मैं सुनौं यह, रोवैं हँसैं लोग सारे ।
मैं ही बटोरौं हँसी ये रँगीली, सुखकी नदीके किनारे ॥ कि० ॥
प्रेम कहैं काहि, जानौं न बौरी, चाहौं न वह विष मीठा ।
विचरहुँ जी-भर ऐसेहि नाचहुँ, गावहुँ और उबीठा ॥ कि० ॥
आवहु तारा किरण, कुसुम त्यों, चन्द हँसी लै सुहाई ।
मलयागिरि लहर उड़ावहु, अलकावली विखराई ॥ कि० ॥

(गाते गाते जाती है ।)

[बातें करते हुए चन्द्रगुप्त और मुराका प्रवेश ।]

चन्द्रगुप्त—मा, मैं अन्यायका बदला चुकानेके लिए निकला हूँ । अग्नि जला दी है । उसमें आज तुम्हारे अपमानने आहुति दी है । यदि पहले कभी स्नेह-दौर्बल्यसे नन्दको भाई समझकर क्षमा करना चाहता था, तो आजसे वह विचार भी मैंने अपने चित्तसे निकाल दिया । मेरा स्नेहाश्रुबिन्दु आज तुम्हारे लिए अग्निका स्फुलिंग बन जाय ।

मुरा—जिस समय नन्दने मुझे 'शूद्राणी मा' कहकरके संबोधन किया था, उस समय वत्स, मुझे ऐसा माळूम होता था कि मानो मैं अग्निकी लपलपाती हुई शिखाके मध्यमें खड़ी हूँ और उसके बाद जब उसकी आज्ञासे वाचालने मेरे केश पकड़कर खींचे–

(रुदन करने लगती है ।)

चन्द्रगुप्त—मा, यदि जीतके सम्बन्धमें कोई सन्देह था तो अब लेश मात्र भी नहीं रह गया । सताई हुई सीताके अश्रुजलमें लंका डूब गई । अपमानिता द्रौपदीके क्रोधसे कुरुवंश भस्म हो गया । अबलाके

ऊपर अत्याचार होनेसे एक जातिकी जाति निर्मूल हो जाती है, फिर नन्दवंश तो चीज ही क्या है? वह तो निर्मूल होवेगा ही। मैं इसका पूरा बदला लूँगा।

मुरा—बेटा, मैं इसी आशासे जीवन धारण कर रही हूँ। (प्रस्थान।)

चन्द्रगुप्त—शूद्राणी! शूद्र क्या मनुष्य नहीं है? क्या क्षत्रियकी भाँति उसके हाथ पैर नहीं होते? मस्तिष्क नहीं होता? हृदय नहीं होता? ओह, इतनी घृणा! अच्छा! एक बार शूद्रकी शक्ति दिखाऊँगा। दिखाऊँगा कि वह भी मनुष्य होता है।—सिकन्दरशाह, तुम्हारी भविष्यद्वाणी सफल करना ही मेरे जीवनका अन्तिम लक्ष्य हो जाय।

[कात्यायनका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—कौन है?—

कात्यायन—मैं कात्यायन हूँ।

चन्द्रगुप्त—और चाणक्य कहाँ हैं?

कात्यायन—वे पूजा समाप्त करके आते हैं।

चन्द्रगुप्त—देखनेमें कैसे मालूम हुए?

कात्यायन—मथे हुए समुद्रके जैसे, नहीं मालूम कि अमृत निकलेगा या विष। परन्तु उनका चेहरा तो इस बार हमको भला नहीं मालूम हुआ।

चन्द्रगुप्त—क्यों?

कात्यायन—हमारे इस सम्वादके देते ही उनका गम्भीर मुख सहसा प्रातःकालके समान दीप्त हो उठा और फिर तत्काल ही गोधूलिके समान म्लान हो गया। उनकी क्षीण देह प्रदीप्त शिखाकी भाँति पहले काँपी और फिर स्थिर होकर खड़ी हो रही। उनके ओठोंकी कोरपर

एक व्यंगहास्य जाग उठा और फिर धीरे धीरे बुझ गया। अन्तमें ऐसा मालूम हुआ कि मानो एक अद्भुत मूर्ति चुपचाप ओठोंको बन्द किये, पीला मुख और ललाटमें गहरी चिन्ता-रेखा धारण किये, दोनों आँखों-के कृष्णवर्ण कोनोंद्वारा अति दूर शून्यमें स्थिर तीक्ष्ण दृष्टिसे देखती हुई खड़ी है।

चन्द्रगुप्त—अद्भुत! (टहलते टहलते) न जाने कब आयँगे!

कात्यायन—लीजिए, वे आ गये!

चन्द्रगुप्त—ये कौन हैं?

कात्यायन—यही चाणक्य पंडित हैं।

चन्द्रगुप्त—ये?

[चाणक्यका प्रवेश ।]

(चन्द्रगुप्त और चाणक्य एक दूसरेके सम्मुख खड़े होकर परस्पर एक दूसरेको निरीक्षण करने लगे। अन्तमें चन्द्रगुप्तने घुटने टेककर प्रणाम किया।)

चाणक्य—तुम चन्द्रगुप्त हो?

चन्द्रगुप्त—हाँ, आपका दास हूँ।

चाणक्य—(सिरसे पैर तक चन्द्रगुप्तको देखकर) तो तुम कर सकोगे।

चन्द्रगुप्त—यदि आपकी कृपा रही तो।

चाणक्य—मैं कौन हूँ? कोई नहीं। तुम अकेले ही कर सकोगे। मैं कौन हूँ? एक दीन ब्राह्मण। अति दीन।

चन्द्रगुप्त—दीन ब्राह्मण?

चाणक्य—आज ब्राह्मणके तुल्य और कौन दीन है? अब उसके शापसे सगर-वंशका भस्म होना तो दूर रहा, दिया तक नहीं जल सकता। उसका उपवीत (जनेऊ) आज भिक्षुकका चिह्न मात्र है। आज क्षत्रिय उसको लात मारकर चला जाता है।

(चन्द्रगुप्त स्तब्ध हो रहते हैं।)

चाणक्य—हाँ, हम ब्राह्मण कभी कभी समुद्रकी तरंगोंके समान उठकर आगे झपटते हैं किन्तु तटपर बाधा पाकर गहरी और गिरी हुई साँस छोड़कर लौट जाते हैं। अब कुछ भी शक्ति शेष नहीं है, कुछ भी शक्ति नहीं है।

चन्द्रगुप्त—यह क्या ! हमने तो सुना था कि चाणक्य पंडित—

चाणक्य—विचक्षण, विद्वान् और कूटनीतिज्ञ है। यही न ?–तुमने ठीक ही सुना है। केवल एक बात तुमने नहीं सुनी है कि उसके हृदय नहीं है। मेरी रीढ़ टूट गई है।—यह वक्षःस्थल—(सहसा चन्द्रगुप्तका हाथ अपने वक्षःस्थलपर रखकर) इस वक्षःस्थलपर हाथ रखकर देखो, क्या देख रहे हो ?

चन्द्रगुप्त—क्षीणभावसे रक्त-स्रोत बह रहा है।

चाणक्य—काहेका स्रोत ?

चन्द्रगुप्त—रक्तका।

चाणक्य—मूर्ख ! रक्त नहीं है—इस देहमें रक्त कहाँ ! यह बर्फका प्रवाह है। रक्त तो जो कुछ था, सब जम गया है।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, मैंने सब सुना है। मुझे आप केवल आज्ञा दीजिए। मुझे केवल आशीर्वाद दीजिए। मुझसे केवल इतना कहिए कि—चन्द्रगुप्त, तुम आगे बढ़ो—और कुछ मुझे नहीं चाहिए। और सब कुछ मैं कर लूँगा।

चाणक्य—कर सकोगे ?

चन्द्रगुप्त—हाँ, कर सकूँगा। गुरुदेव, सिकन्दरशाहकी भविष्यद्वाणी यह है कि मैं दिग्विजयी होऊँगा। वही आश्वासनपूर्ण वाणी सोते-जागते उठते-बैठते मेरे कानोंमें अब भी गूँज रही है। मैं कर सकूँगा।

आप केवल इस महायज्ञके पुरोहित बन जाइए और आज मुझे इस व्रतमें दीक्षित कर लीजिए।

चाणक्य—क्यों प्राणेश्वरी, तुम्हारी क्या आज्ञा है ?

चन्द्रगुप्त—यह और कौन है ! ये किससे बातें करते हैं !

चाणक्य—तुम्हारी आज्ञा है ? अच्छा !—(चंद्रगुप्तसे) तब पैर छूकर शपथ करो कि इस ब्राह्मणका आदेश तुम सर्वदा पालन करोगे।

चन्द्रगुप्त—(चाणक्यका चरण स्पर्श करके) शपथ करता हूँ गुरुदेव, आप मुझे दीक्षा दीजिए।

चाणक्य—हाँ, तुम कर सकोगे। तुम्हारा मुख, तुम्हारी दृष्टि और भाव-भंगी ये सब एक स्वरसे बतलाते हैं कि तुम कर सकोगे। हाँ, मैं तुम्हें दीक्षित करूँगा। तुम्हें मगधके सिंहासनपर बिठाऊँगा। तुम्हें भारतका अधीश्वर बनाऊँगा। ईंधन तैयार करो चन्द्रगुप्त, मैं उसे ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित करूँगा ! वह अग्नि दावानलके समान व्याप्त होगी ! समस्त भारतवर्ष जल उठेगा !—चन्द्रगुप्त !

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव !

चाणक्य—ऊपरकी ओर मुख करो, देखें !—क्या देखते हो ?

चन्द्रगुप्त—आकाश।

चाणक्य—किस रंगका ?

चन्द्रगुप्त—पीलापन लिये हुए लाल रंगका।

चाणक्य—इससे क्या समझते हो ?

चन्द्रगुप्त—आँधी आवेगी।

चाणक्य—ठीक है ! आँधी आवेगी।—और सामने भविष्यकी ओर देखो ! क्या तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता ?

चन्द्रगुप्त—नहीं।

चाणक्य—तुम अंधे हो! अरे—वहाँ भी आँधी आवेगी!—य कपिलका शाप नहीं है, विश्वामित्रका तपोबल नहीं है, परशुरामका शौर्य नहीं है, वामनका छल नहीं है। यह है ब्राह्मणकी बुद्धि और शूद्रकी निष्ठा, ब्राह्मणकी साधना और शूद्रकी प्रतिहिंसा। यह ब्राह्मणका तेज और शूद्रकी शक्ति! यह स्वर्ग और मर्त्यलोकका एक सा समागम हुआ है! चन्द्रगुप्त, अब भय नहीं है। उठो—जानते हो, मैं अपनी आँखके सामने क्या देख रहा हूँ?

चन्द्रगुप्त—क्या देख रहे हैं गुरुदेव?

चाणक्य—इस प्रधूमिता, प्रज्वलिता, रक्तकी नदियाँ बहाती हु भैरवी भारतभूमिके बदले एक रत्नालंकारा, पुष्पोज्ज्वला, संगीत मुखरा, हास्यमयी जननीकी मूर्ति देख रहा हूँ और देख रहा समुद्रसे समुद्रतक फैला हुआ एक महा साम्राज्य। उस साम्राज्यके प्रतिष्ठाता तुम और उसका पुरोहित यह दीन दरिद्र ब्राह्मण चाणक्य।

द्वितीय अंक ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—हिरातका राजमहल ।

समय—रात्रि ।

[सेल्यूकस और हेलेन ।]

सेल्यूकस—हेलेन, वीरवर सिकन्दरशाहकी मृत्यु हो गई ।

हेलेन—हैं ! यह कैसे माल्रुम हुआ ?

सेल्यूकस—सूर्यके अस्त होनेपर क्या पृथिवी उसे नहीं जाना पाती ?

हेलेन—उसके बाद ?

सेल्यूकस—उसके बाद अब और क्या, वे मुझे एशियाके साम्राज्यका उत्तराधिकारी कर गये हैं ।

हेलेन—एक महती आकांक्षासे प्रेरित होकर उन्होंने आधा एशिया महादेश जीता, किन्तु वे स्वयं अपने देशमें मर भी न पाये ।

सेल्यूकस—हेलेन, सिकन्दरशाह जिस कामको पूरा न कर सके थे, उसे मैं पूरा करूँगा ।

हेलेन—कौनसा काम ?

सेल्यूकस—भारतवर्षको जीतना ।

हेलेन—इससे क्या लाभ होगा ?

सेल्यूकस—कीर्ति ।

हेलेन—नहीं, अपकीर्ति होगी !—पुरुषकी उच्चाशापर आश्चर्य है ! वह किसी वस्तुसे पूर्ण नहीं होती। पुरुषकी हिंसाप्रवृत्तिपर भी आश्चर्य होता है ! मानो मनुष्य कोई जंगली शिकार हो, जिसको वध करना ही चाहिए ! और उसपर भी तुर्रा यह कि मनुष्य मनुष्यका मांस नहीं खाता। और क्यों पिताजी, क्या इसी लिए नहीं खाता है कि स्वादिष्ट नहीं होता है ?

सेल्यूकस—प्रथा नहीं है।

हेलेन—तो फिर इसकी भी प्रथा चला दो पिताजी, आपका नाम रह जायगा।—पिताजी, आप—पुरुष लोग—इतने रक्तपिपासु क्यों हैं ? आप लोगोंके हृदयमें क्या और कोई प्रवृत्ति है ही नहीं ?

सेल्यूकस—कौनसी प्रवृत्ति ?

हेलेन—दुःखीका दुःख निवारण करना, रोगीकी सेवा करना, भूखेको भोजन देना, अज्ञानीको ज्ञान देना, ये सब क्या कुछ भी नहीं हैं ? केवल स्वार्थका प्रसार, दुःखकी वृद्धि, अत्याचार, अविचार और परपीड़न।

सेल्यूकस—डिमास्थनीजने एक स्थलपर कहा है कि विजिगीषा मानव-हृदयकी एक महती प्रवृत्ति है।

हेलेन—डिमास्थनीजने ऐसा कहीं नहीं कहा है। मैं डिमास्थनीज-को लिए आती हूँ (जानेके लिए उद्यत होती है।)

सेल्यूकस—नहीं, नहीं, लानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्या तुमने डिमास्थनीज भी पढ़ लिया है ?

हेलेन—हाँ पढ़ा है।

सेल्यूकस—तुम इतना क्यों पढ़ती हो ? पढ़-पढ़कर तुम अपना मौलिकत्व नष्ट कर रही हो।

हेलेन—पढ़नेसे मौलिकत्व नष्ट होता है ? और न पढ़नेसे मनुष्य मौलिक होता है ? पिताजी, यदि ऐसा है तो सबसे अधिक मौलिक है—यह—यह गधा ।

सेल्यूकस—क्यों ?

हेलेन—क्यों कि यह कुछ भी नहीं पढ़ता है ।

सेल्यूकस—तुम मेरा अपमान करती हो ?

हेलेन—नहीं, पिताजी, आपका अपमान और मैं करूँ ?

सेल्यू०—तुम मेरी गधेके साथ तुलना करती हो ?

हेलेन—नहीं पिताजी, मैं तो नहीं करती ।

सेल्यू०—करती हो ।

हेलेन—मुझसे गलती हुई । (हाथ जोड़कर) क्षमा चाहती हूँ ।

सेल्यू०—मैं क्षमा नहीं करूँगा, मुझे क्रोध आ गया है। तुम प्रायः मेरा अपमान ही किया करती हो।

हेलेन—पिता—(हाथ पकड़ लिया ।)

सेल्यू०—जाओ ! (हाथ छुड़ा लिया ।)

हेलेन—(गद्गद स्वरसे) पिता—(घुटने टेक दिये ।)

सेल्यू०—अरे नहीं, नहीं !—उठो—यह क्या !—तुमसे कुछ भी गलती नहीं हुई । गलती मेरी है । मैंने क्रोधमें आकर 'जाओ' कह दिया । मैं नहीं समझता था कि मैं कभी तुम्हारे ऊपर इतना कठोर हो सकता हूँ । उठो—(हाथ पकड़कर उठाके)—मुझे क्षमा करो हेलेन !

हेलेन—हैं पिताजी, यह क्या कहते हो ! (गलेमें हाथ डालकर लिपट गई ।)

सेल्यू०—(हेलेनको दोनों भुजाओंमें लपेटकर) मातृविहीना बेटी मेरी !

हेलेन—मैं मातृविहीना हूँ ? कौन कहता है ? नहीं, आप मेरी माता भी हैं ! यदि आप केवल बाप ही होते, तो क्या मैं इतना उत्पात कर पाती ?

सेल्यू०—तुम क्या उत्पात करती हो !

हेलेन—मैं कौन उत्पात नहीं करती हूँ पिताजी ?

सेल्यू०—तुम तो मुझसे कभी कुछ भी नहीं माँगती हो ।—क्यों नहीं माँगती हेलेन ?

हेलेन—बिना माँगे ही मुझे सब कुछ मिल जाता है । मेरे पास क्या नहीं है पिताजी ?

सेल्यू०—न तुम्हारे पास बढ़िया कपड़े हैं, न बहुमूल्य आभूषण—

हेलेन—सब हैं मेरे पास ।

सेल्यू०—तो उन्हें पहनती क्यों नहीं ?

हेलेन—पहननेसे आप सन्तुष्ट होंगे ? अच्छा, तो अब पहना करूँगी ।

सेल्यू०—हाँ पहना करो ! मैं देखूँगा ।—और देखो, मैं जरा सेनाध्यक्षके शिविरमें जाता हूँ, तुम जाके सो रहो ।—धात्री !—

हेलेन—जाती हूँ पिताजी । अब मैं छोटीसी बच्ची नहीं हूँ, जो मुझे अब भी संध्या होते ही धात्री आकर सुलायगी ।

सेल्यू०—परन्तु तुम बड़ी देर तक रात्रिमें पढ़ा करती हो । पढ़ते पढ़ते तुम्हारा रंग मलिन होता जाता है । इतना मत पढ़ा करो ।

हेलेन—(हँसकर) अच्छा पिताजी, अबसे मैं मौलिक बनूँगी ।

(सेल्यूकस जाता है ।)

(हेलेन एक पुस्तक लेकर थोड़ी देर तक पढ़ने लगी, अनन्तर पुस्तक रखकर कहने लगी—)

हेलेन—सूर्य्य अस्त हो रहा है। आज सिन्धु नदीके तीरवाला उस दिनका वह गरिमामय सूर्यास्त याद आता है। कहाँ वह रविकरोज्ज्वल भारत और कहाँ यह कुहरावृत अफगानिस्तान। (फिर पढ़ने लगी)—वह मगधदेशका राजपुत्र !—मैं संस्कृत पढ़ूँगी। सुनती हूँ कि संस्कृत भाषा भावुकता, कवित्व और ज्ञानकी खानि है। (फिर पढ़ने लगी)—कौन है ? (घूमकर देखती है) ओ !—ऐण्टीगोनस !

[ऐण्टीगोनसका प्रवेश ।]

ऐण्टी०—हाँ हेलेन, मैं ही हूँ !

हेलेन—(उठकर) पिता घरमें नहीं हैं।

ऐण्टी०—सो तो मैं जानता हूँ।

हेलेन—तो तुम यहाँ—अकस्मात् ?

ऐण्टी०—मेरा आगमन क्या तुमको इतना अप्रीतिकर है ?

हेलेन—यह तो मैंने नहीं कहा।

ऐण्टी०—कैसी कपटी है यह स्त्रीजाति !—अब तक, इतने दिनोंमें भी मैं तुम्हारे मनकी बात न जान सका।—'यह तो मैंने नहीं कहा' —क्या अच्छा उत्तर है ! तुमने नहीं कहा, यह तो ठीक है, किन्तु मेरा आना तुम्हें अच्छा लगा या बुरा, इसका उत्तर देनेमें कौनसी बाधा है ?

हेलेन—इसका उत्तर देनेमें लाभ क्या ?

ऐण्टी०—हानि भी क्या है ?—कहनेसे तुम्हें लाभ न सही, सुननेसे मुझे तो लाभ है !

हेलेन—तुम्हें क्या लाभ है ?

ऐण्टी०—लाभ यही है कि इस प्रश्नके उत्तरपर मेरा भविष्य निर्भर है। सुनो हेलेन, अब मैं अन्तिम बार तुमसे पूछने आया हूँ।

हेलेन—क्या ?

ऐण्टी०—मैंने आँखोंमें आँसू भरके घुटना टेककर भिक्षा माँगी; परन्तु न मिली। क्रोधकम्पित स्वरसे मैंने माँगा, परन्तु न पाया। आज सरल, सहज, शुष्क भाषामें एक बार और जिज्ञासा करनेके लिए आया हूँ। इसमें क्रोध नहीं है, खुशामद नहीं है।—मैं केवल जानना चाहता हूँ कि मेरे साथ विवाह करोगी या नहीं ?

हेलेन—मेरे पिताके कन्धेपर जिसने तलवार चलाई, उसके साथ मैं विवाह नहीं कर सकती।

ऐण्टी०—वही एक बात !—पर उसका भी कारण तो तुम ही थीं न ? उस घटनाके पहले मैंने तुमसे प्रस्ताव किया तो तुमने कहा कि पिताकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। तब तुम्हारे पितासे जिज्ञासा की। उन्होंने व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया कि जिसके जन्मका ठीक पता नहीं है, उसके साथ सेल्यूकसकी कन्याका विवाह असम्भव है।

हेलेन—वे सेनापति और तुम एक साधारण सेनाध्यक्ष।

ऐण्टी०—इस कारणसे नहीं हेलेन। उन्होंने मेरे अज्ञात जन्मपर ताना मारा, इसी तानेकी ज्वालासे पागल होकर मैंने उनके ऊपर तलवार चलाई—हेलेन, मुझे क्षमा करो।

हेलेन—चाहे मैं तुम्हें क्षमा कर दूँ; परन्तु तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकती।

ऐण्टी०—क्यों ?

हेलेन—राजकन्या अपने किसी प्रजाजनके आगे कारण बतानेके लिए वाध्य नहीं है।

ऐण्टी०—इतना गर्व !

हेलेन—अच्छा, मैं यह वाक्य वापस लेती हूँ और उसके स्थानमें इतना ही कह देना यथेष्ट समझती हूँ कि कोई भी कुमारी कन्या अपने

विवाहके सम्बन्धमें अपने मतामतके कारणोंको प्रकट करनेके लिए बाध्य नहीं है।

ऐण्टी०—मैं कारण नहीं चाहता, मैं केवल उत्तर चाहता हूँ। बोलो, तुम मेरे साथ विवाह करोगी या नहीं?

हेलेन—ऐं! एकाएक इतना रूक्ष स्वर!

ऐण्टी०—उत्तर चाहिए। विवाह करोगी या नहीं?—बोलो (हाथ पकड़ लिया।)

हेलेन—ऐण्टीगोनस!—कापुरुष, हाथ छोड़! तू यूनानी है?

ऐण्टी०—मैं प्रेमी हूँ।—सरल सहज उत्तर दो—विवाह करोगी या नहीं?

हेलेन—तेरे साथ विवाह करनेकी अपेक्षा मैं एक दुर्गन्धगलित-कुष्ट रोगीके साथ विवाह करनेको तैय्यार हूँ।—अधम! (जोरसे अपना हाथ छुड़ाकर) चला जा यहाँसे!

ऐण्टी०—अच्छा!—जाता हूँ। (इसके अनन्तर जाते जाते फिर लौट आया) जानेके समय एक बात कहे जाता हूँ हेलेन!

हेलेन—'राजकन्या' कहो। मेरा नाम लेकर पुकारनेका अधिकार तुम्हें नहीं है। एक सामान्य सैनिक—जिसको जब चाहूँ इच्छा करते ही कीड़ेकी भाँति पैरसे कुचल सकती हूँ—कुचलती नहीं हूँ, इस कारण कि वह इतना अधम है—वह एशियाके सम्राट् सेल्यूकसकी कन्याका अंग स्पर्श करे!—इतनी स्पर्धा!

ऐण्टी०—अच्छा! इसका उत्तर और किसी दिन दूँगा!—देखें कभी पहिया घूमता है या नहीं। देखें कभी मेरी ओर भी भाग्यचक्र फिरता है या नहीं।

(यह कहकर ऐण्टीगोनस चलने लगा। फिरा तो देखा, सेल्यूकस खड़ा है।)

सेल्यूकस—फिर एकान्तमें साक्षात् !

हेलेन—(कम्पित स्वरमें) पिता,—जो आपकी कन्याके शरीरपर हस्तक्षेप करे, ऐसा असभ्य कापुरुष यूनानी आपका सेनाध्यक्ष ?

सेल्यूकस—यह क्या ?—यह क्या सच है ऐण्टीगोनस ?

ऐण्टी०—हाँ सच है।—मुझसे अपराध हुआ।

सेल्यूकस—हूँ !—ऐण्टीगोनस, सिकन्दर शाहकी आज्ञासे तुम निर्वासित हुए थे। उसपर भी मैंने तुमको अपना सेनाध्यक्ष बनाया। उसका यह बदला !—सैनिकगण !

(दो सैनिकोंका प्रवेश।)

सेल्यूकस—इसे क़ैद कर लो। (सैनिकोंने ऐण्टीगोनसको गिरफ्तार कर लिया।) ऐण्टीगोनस, तुम्हारी सजा मौत है। सैनिको, इसे इसी समय वध्य भूमिको ले जाओ ! (सैनिकगण ऐण्टीगोनसको लेजानेके लिए उद्यत होते हैं।)

हेलेन—ठहरो। (सेल्यूकससे) पिता, इस बार इसे छोड़ दीजिए।

सेल्यूकस—नहीं, इसकी इतनी स्पर्धा !

हेलेन—पदच्युत कर दीजिए।

सेल्यूकस—पदच्युत कर देना इसके लिए यथेष्ट दण्ड नहीं होगा।

हेलेन—इसको राज्यसे निकाल दीजिए। परन्तु मृत्युदण्ड मत दीजिए।

सेल्यूकस—नहीं हेलेन, ऐसा नहीं हो सकता।

हेलेन—ऐण्टीगोनस वीर है। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। इस बार—अन्तिम बार इसे और क्षमा कर दीजिए—इसको निर्वासित कर दीजिए।

ऐण्टी०—मैं सेल्यूकससे क्षमा नहीं माँगता। सेल्यूकस, मुझसे अपराध हुआ, स्वीकार करता हूँ। अपराधका दण्ड दो। मैं तुमसे क्षमा नहीं चाहता।

हेलेन—मैं चाहती हूँ।—पिता!—

सेल्यूकस—नहीं हेलेन—

हेलेन—(घुटना टेककर हाथ जोड़कर) पिता!—

सेल्यूकस—अच्छा, इस बार तुम्हें क्षमा किया ऐण्टीगोनस—जाओ। किन्तु हमारे साम्राज्यमें यदि फिर तुमने कभी पैर रक्खा, तो तुम्हारी सजा मौत होगी।—छोड़ दो।

(सैनिक छोड़ देते हैं। ऐण्टीगोनस धीरे धीरे चला जाता है।)

हेलेन—मैं जानती थी पिता, तुम उसे छोड़ दोगे।

सेल्यूकस—तुम्हारे हाथ जोड़नेपर हमारी सब युक्तियाँ हार मानती हैं। हेलेन, तुम मेरी बुढ़ापेकी लड़की हो, इस कारण मुझपर खूब हुक्म चलाती हो।

हेलेन—(हँसकर) पिताजी, इस विषयमें थेमिस्टकिलीस क्या कहता है?

सेल्यूकस—कुछ नहीं कहता है। तुम असाध्य गुस्ताख़ हो,—जाओ। (जाती है।)

(हेलेन जल्दी जल्दी टहलने लगी फिर—)

हेलेन—पिता, आपहीकी इच्छा मेरी इच्छा है। मैं आपके अगाध स्नेहके परिवर्तनमें और क्या दे सकती हूँ! आपके कन्धेके ऊपर जिसने तलवार उठाई, उसके साथ आपकी कन्या कभी विवाह नहीं करेगी—चाहे वह व्यक्ति ऐण्टीगोनस ही क्यों न हो।

द्वितीय दृश्य।

स्थान—युद्धक्षेत्रमें चाणक्यका शिविर।

समय—रात्रि।

[मुरा और चाणक्य।]

मुरा—कल युद्ध होगा ?

चाणक्य—हाँ कल युद्ध है।

मुरा—चन्द्रगुप्त आक्रमण करेगा ?

चाणक्य—हाँ मुरा। यह बात तो आज मैंने तुमसे एक सौ एक बार कही होगी—फिर इतनी रात यही बात पूछने क्यों आई हो ?

मुरा—स्थिर नहीं हो सकती गुरुदेव !—गुरुदेव, इस युद्धकी आवश्यकता नहीं है। युद्ध नहीं होना चाहिए।

चाणक्य—(आश्चर्यसे) मुरा !

मुरा—चन्द्रगुप्त मेरा पुत्र है; और नन्द—वह भी मेरा पुत्र है। चन्द्रगुप्त और नन्द—ये एक डंठलके दो फूल हैं। मेरे हृदय-आकाशके सूर्य और चन्द्र हैं। उनके संघातसे यह आकाश चूर्ण हो जायगा। ना गुरुदेव—युद्धकी आवश्यकता नहीं है। मेरा चन्द्रगुप्त पथका भिखारी ही बना रहे—सो ठीक; परन्तु लड़ाईकी आवश्यकता नहीं है।

चाणक्य—नारी, सामने कालकी संहारमूर्ति है ! देखती नहीं है कि आकाश कितना स्थिर है ! मानो श्वास रोके हुए एक आँधीके झोंकेकी अपेक्षा कर रहा है। सब कुछ तैयार है। अब नारीकी प्रार्थना—गिड़गिड़ाहट सुननेका समय नहीं है। जाओ, अपने शिविरमें चली जाओ।

मुरा—नारीकी प्रार्थना ! गिड़गिड़ाहट ! क्या नारी इतनी अवज्ञेय है ! गुरुदेव, आप नहीं समझ सकते हैं कि इस हृदयमें कैसी आँधी बह रही है। मैं कितना सहन कर रही हूँ, इसको आप कैसे समझ सकते हैं गुरुदेव ?

चाणक्य—और नारी, तू भी क्या समझेगी ? तू कैसे समझेगी उस मनुष्यके लुप्त गौरवकी दीन महिमाको जिसका रुद्ध आवेग कारागार-के लोहद्वारसे अपना माथा टकराकर अपने ही रक्तमें लिथड़ा हुआ भूमिमें लोट रहा है। नारी, तू कैसे समझेगी इस प्रतिहिंसाकी ज्वालाको—इस मर्मदाहको—जाओ, विरक्त मत करो। जाओ, अपने शिविरमें जाओ।—यह युद्ध अनिवार्य है।

मुरा—किन्तु गुरुदेव !—

चाणक्य—(कठोर स्वरसे) जाओ। (भयभीत होकर मुराका प्रस्थान।)

(चाणक्य अकेला टहलने लगता है।)

चाणक्य—शूकरका मुख, मकड़ीकी खाल, शवदाहकी गन्ध, एरण्डका आस्वाद और गर्दभका रेंकना—यह सब एक साथ कढ़ाईमें चढ़ा दिया गया है। देखें, इससे क्या बनता है। यह तो निश्चय ही है कि एक नवीन प्रकारका व्यञ्जन तैयार होगा !—हे अदृश्य महाशक्ति ! कितनी मधुर सड़ाईंधकी गन्धवाले पशुओंके श्मशानमें होकर तुम मेरा हाथ पकड़े लिये जा रही हो ! बलिहारी ! (बाहरकी ओर देखकर) ओह ! देखो, बाहर कोहरेका प्रत्येक अणु स्फुलिंगकी भाँति चमक रहा है। आकाश धक-धक करके जल रहा है। और मैं इस अग्नि-प्रदाहमें अपना शरीर डाल रहा हूँ; परन्तु जलता नहीं हूँ। मालूम होता है कि शुद्ध-ब्रह्म तेजके कारण नहीं जलता हूँ। (हँसकर) नहीं, इस कलियुग-

में भी एक बार ब्राह्मणका तेज दिखलाना होगा—क्यों न प्रेयसी? तुम बड़े बड़े दाँतोंसे हँसकर, रूखा मुँड़ा हुआ मस्तक हिलाकर कहती हो — "हाँ"।—उसे सुनता हूँ। हे सुन्दरी, तुम कितनी कदर्य हो। तुम्हारे प्रेममें अन्तमें मैं कहीं पागल न हो जाऊँ।—कौन! कात्यायन?

[कात्यायनका प्रवेश।]

कात्यायन—हाँ चाणक्य, मैं ही हूँ।

चाणक्य—इतनी रात गये?

कात्यायन—एक संवाद है।

चाणक्य—क्या?

कात्यायन—नन्दका वृद्ध मंत्री आया था।

चाणक्य—(आग्रहसहित) आया था क्या? हाँ, फिर!

कात्यायन—उसने संधिकी बात कही थी।

चाणक्य—क्या कहता था?

कात्यायन—इधर उधरकी बात होनेके बाद उसने कहा कि यह भाइयों भाइयोंमें विवाद किस लिए? इसी लिए न कि राज्यके समान भाग कर दिये जायँ! अरे, नन्द अबोध छोटा भाई ठहरा। जो कुछ वह कर चुका है, क्या बड़ा भाई उसको क्षमा नहीं कर सकता है?

चाणक्य—(कौतूहलके साथ) ठीक! ठीक! क्या उस समय चन्द्रगुप्त वहाँ था?

कात्यायन—हाँ था।

चाणक्य—भाई, यह मंत्री बड़ा चालाक है!—क्या चन्द्रगुप्तने कुछ कहा था?

कात्यायन—कुछ नहीं।

चाणक्य—तुमने कुछ कहा था?

कात्यायन—मैंने यह कह दिया कि आपका परामर्श लेकर उत्तर कहला भेजेंगे ।

चाणक्य—अरे, उसको हमारे पास क्यों नहीं ले आये ?

कात्यायन—आनेको वह राजी नहीं हुआ ।

चाणक्य—अच्छी चाल चला है—अपनी पराजयको अनिवार्य देखकर—हूँ ! (सोचता है ।)

कात्यायन—आप क्या कहते हैं ?

चाणक्य—कुछ नहीं ।—

"मनसा चिन्तितं कर्म वचसा न प्रकाशयेत् ।"

कात्यायन—किन्तु मैं तो तुम्हारा मित्र हूँ ।

चाणक्य—पण्डित चाणक्यका मत है कि—

"न मित्रेष्वपि विश्वसेत् ।"

तुमसे अब भी कहनेका समय नहीं आया है । फिर भी इतना कह सकता हूँ कि सन्धि नहीं होगी ।

कात्यायन—क्यों ?

चाणक्य—तुम इस समय अपने शिविरमें जाओ । मैं एक बार अपनी प्रेयसीसे परामर्श करना चाहता हूँ ।

कात्यायन—यह प्रेयसी कौन है ?

चाणक्य—जानते नहीं ? (हँसकर) मेरी एक गणिका है ।

कात्यायन—तुम और गणिका ?

(चाणक्य जोरसे हँसने लगता है और कात्यायन मुँह फाड़कर उसकी ओर ताकने लगता है ।)

चाणक्य—क्या तुम नन्दके इस मंत्रीको जानते हो ?

कात्यायन—क्यों नहीं जानता हूँ ? बचपनमें मैंने और उसने एक ही साथ शास्त्र पठन किया था। मनोविज्ञानमें उसका मस्तिष्क बहुत अच्छा था। वह दिनरात सांख्य पढ़ा करता था।

चाणक्य—और तुम, मैं समझता हूँ कि पाणिनि घोंटा करते थे ?

कात्यायन—तुम तो हँसते हो! पाणिनि व्याकरणका एक एक सूत्र एक एक गूढ तत्त्वकी गाथा है—यही देखो—

चाणक्य—यही तो सब खराब करता है।—ठहरो, जानते हो, पाणिनि सुननेके लिए हमारे पास समय नहीं है। व्याकरणसे कुछ न होगा।

कात्यायन—पाणिनिको तुम तुच्छ समझते हो; परन्तु जान रक्खो कि—

चाणक्य—नन्दने तुमको क्यों कैद किया था, इसका कारण अब हमने कुछ कुछ जान पाया है।

कात्यायन—क्यों कैद किया था ?

चाणक्य—यही तुम्हारे पाणिनिसे तंग आकर! तुम बैठे बैठे पाणिनि घोंटा किये। राज्यमें मरी फैली—पाणिनि। युद्ध हुआ—पाणिनि। अतिवृष्टि हुई—पाणिनि। महारानीके साथ महाराजकी कलह हुई—पाणिनि। सुना है कि अन्तमें तुम्हारी इस पाणिनि-पीड़ासे राजा नन्द बेचैन हो उठे थे।

कात्यायन—बेचैन कैसे ?

चाणक्य—सुनते हैं कि तुम्हारी पाणिनि-पीड़ाके कारण राजाको अन्तमें शूल-वेदना उठ खड़ी हुई, सिर घूमने लगा, खानेपर हिचकियाँ आने लगीं। अन्तको उन्हें निरुपाय होकर तुम्हें कारागारमें

बन्द करनेके लिए विवश होना पड़ा ।—पाणिनिसे बड़ी भारी भूल हो गई ।

कात्यायन—कौन भूल ?

चाणक्य—यही कि इतना भारी व्याकरण लिख मारा कि जिसको कोई भला आदमी कण्ठस्थ नहीं कर सकता ।

कात्यायन—बड़े दुखकी बात है कि तुम कुछ नहीं जानते । पाणिनिके सूत्र—

चाणक्य—बहुत बढ़िया हैं ! तुम शिविरमें जाओ ।—देखो, इस समय चन्द्रकेतु कहाँ है ?

कात्यायन—चन्द्रगुप्तके शिविरमें ।

चाणक्य—बिलकुल सीधी बात है । अपने पाणिनिके किसी सूत्रसे भला यह बात निकाल सकते हो ?

कात्यायन—पाणिनिने ऐसे तुच्छ विषयोंको लेकर माथापच्ची नहीं की है ।

चाणक्य—जाओ । चन्द्रकेतुको हमारे शिविरमें भेज दो ।

कात्यायन—अच्छा भेजे देता हूँ । किन्तु पाणिनि—

चाणक्य—फिर पाणिनि ! युद्धक्षेत्रमें आकर दोपहर रात्रि गये पाणिनिके सुननेका समय नहीं है । उसको भेजो जाकर, विशेष आवश्यक काम है ।

कात्यायन—परन्तु पाणिनिके सूत्र तो—

चाणक्य—नरकमें जावें पाणिनि और उनके सूत्र । जाओ—

कात्यायन—लोग यही समझते हैं कि पाणिनिमें केवल व्याकरण ही व्याकरण है ।—परन्तु वे मूर्ख हैं !—पाणिनिमें वेदान्तसार—

चाणक्य—जाओ कात्यायन, तर्क मत करो । तुमसे कहते हैं, जाओ ।

कात्यायन—जाता हूँ। (जाते जाते) किन्तु तुमने पाणिनि
अपमान किया है। (दुःखित भावसे प्रस्थान।)

चाणक्य—बेचारा बिलकुल सीधा गौ जैसा है। कुछ समझता
बूझता नहीं है। केवल प्रवृत्तिके वश काम किये जाता है।—प्रेयसी!
क्या कहती हो? नन्दके मंत्रीने एक चाल चली है। पराजयको अनि
वार्य देखकर खासी चाल चली है। नहीं तो और क्या चाल चलता
मैंने लक्ष्य किया है—देखता हूँ कि उसको तुम भी जानती हो
खूब मौक़ा देखकर चोट की है।—किन्तु मंत्रीजी! चाणक्यसे पार
पाओगे। तुमने जरा होशियार कर दिया, बस तुम्हारी बातका ए
यही परिणाम हुआ।

[चन्द्रकेतुका प्रवेश और प्रणाम।]

चाणक्य—जयोऽस्तु। तुमको मैंने बुलवा भेजा था।

चन्द्रकेतु—क्या आज्ञा है?

चाणक्य—कल युद्ध है। यदि तुम प्राण तुच्छ समझके युद्ध करो,
तो इस युद्धमें हम लोगोंकी जीत निश्चित है।

चन्द्रकेतु—"यदि प्राण तुच्छ समझके युद्ध करो," यह बात
आप क्यों कहते हैं गुरुदेव? क्या आपका मुझपर अविश्वास है?

चाणक्य—नहीं।

चन्द्रकेतु—तो?

चाणक्य—मुझे चन्द्रगुप्तपर पूरा विश्वास नहीं है।

चन्द्रकेतु—यह क्या गुरुदेव?

चाणक्य—मैंने लक्ष्य करके देखा है कि उच्चाशाकी अपेक्षा अधिक
बलवती एक और प्रवृत्ति उसके पीछे फिरती है। मैं देखता हूँ कि
देखते देखते चन्द्रगुप्तका दीप्तमुख सहसा मेघाच्छन्न हो जाता है, थोड़ीसी

वृष्टि भी हो जाती है । चन्द्रगुप्तका शौर्य्य दुर्जय है, यदि इस प्रवृत्तिके साथ उसका युद्ध न हो—यह उसमें वाधा न डाले तो ।—सावधान !

चन्द्रकेतु—तो आपकी क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—कल युद्ध है । युद्ध पर्यन्त तुम उसे सर्वदा उसके पास रहकर घेरे रहना, अकेला मत छोड़ना और ठीक युद्धके समय भी उसका साथ मत छोड़ना ।

चन्द्रकेतु—जो आज्ञा ।

चाणक्य—जाओ, मुरा और मैं दोनों इस पर्वतके नीचे पुलके पास तुम्हारी विजयवार्त्ताकी प्रतीक्षा करेंगे ।

चन्द्रकेतु—जो आज्ञा ।

चाणक्य—जाओ ।—(चन्द्रकेतु जानेको उद्यत होता है) और देखो—(चन्द्रकेतु ठहरता है) चन्द्रगुप्त सो रहा है ?

चन्द्रकेतु—हाँ, गुरुदेव ।

चाणक्य—एक बार—नहीं, जगाना मत । सोने दो । तो मुराको—नहीं, आज रातको कोई प्रयोजन नहीं । कल तुम मुँह अँधेरे ही उठना । चन्द्रगुप्तको भी उसी समय जगा लेना और मुराके जागनेके पहले ही तुम और चन्द्रगुप्त युद्धयात्रा कर देना ।

चाणक्य—जाओ ।

(चन्द्रकेतु चला गया ।)

चाणक्य—उदार युवक ! फिर !—नहीं प्रेयसी ! अब नहीं, हटात् मुखसे निकल गया था ।—निर्बोध युवक ! दूसरेके लिए अपना सर्वस्व तुमने दावपर लगा दिया है ! चन्द्रगुप्त तुम्हारा कौन है !—मूर्ख !

(प्रस्थान ।)

तृतीय दृश्य।

स्थान—हिरातका राजमहल।

समय—प्रभात।

[ऐण्टीगोनस और क़ैदीकी अवस्थामें सेल्यूकस खड़ा है।]

ऐण्टी०—सेल्यूकस, आज तुम हमारे क़ैदी हो !

सेल्यू०—हाँ यह जानता हूँ ऐण्टीगोनस।

ऐण्टी०—सम्राट्, आज तुम्हारा वह दम्भ कहाँ गया ?

सेल्यू०—दम्भ मैंने कभी नहीं किया। युद्धमें हार और जीत त होती ही है। अनेक युद्धोंमें हम जीते और आज तुम्हारे हाथसे पराजि हो गये। यदि और युद्ध हो तो—

ऐण्टी०—सेल्यूकस—अब और युद्ध नहीं होगा, यही अन्तिम यु है !

सेल्यू०—अन्तिम युद्ध ?—क्या तुम हमारी हत्या करोगे ?

ऐण्टी०—ना, हत्या नहीं करेंगे।

सेल्यूकस—तो फिर क्या करना चाहते हो ? ऐण्टीगोनस, य क्या ! मैं तुम्हारी आँखोंमें एक हिंस्र ज्वाला देख रहा हूँ। तुम्हारा मु पीला पड़ गया है। दाँतोंसे दाँत रगड़ रहे हो। ऐसा माल्रम हो है कि तुम्हारे मनमें एक पैशाचिक संकल्प उठ रहा है और उसक भीषण आकार देखकर तुम स्वयं ही सिहर उठते हो।

ऐण्टी०—नहीं, हम तुम्हारी हत्या नहीं करेंगे।

सेल्यूकस—ऐण्टीगोनस, वही बात बार बार क्यों उच्चारण करते हो

ऐण्टी०—हम सुसभ्य यूनानी जातिके हैं। युद्धमें परस्पर ए दूसरेकी छातीमें छुरी घुसड़ते हैं, हिंस्र व्याघ्रकी भाँति एक दूसरेक खा जाते हैं, युद्धके अनन्तर शत्रुको चिरांध कारागारमें बन्द कर रख

हैं; किन्तु हत्या नहीं करते हैं। तुमको भी उसी चिरांध कारागारमें बन्द कर रक्खेंगे । हत्या नहीं करेंगे, भय न करो।

सेल्यू०—ना ऐण्टीगोनस, उससे अच्छा तो यह है कि एक बार ही हमारी हत्या कर डालो। तिल तिल करके मत मारो।

ऐण्टी०—नहीं, हम सभ्य यूनानी हैं। तुमको जीवन भर क़ैद रक्खेंगे। ऐसे कमरेमें बन्द करेंगे कि जहाँ सूर्य्यका प्रकाश भयसे प्रवेश न करेगा और वायु प्रत्याहत होकर लौट आयगा।—हत्या नहीं करेंगे। सेल्यूकस, मैं बचपनहीसे पितृहीन हूँ। ईश्वरने मुझे दाक्षिण्यके द्वारका भिखारी बनाकर इस संसारमें छोड़ दिया था। परन्तु मैं दारिद्रिकी कठोर बाधाको हटाकर अपने शौर्य और चातुर्यके बलसे सेनाध्यक्ष हो गया—यह क्या मेरे लिए लज्जाकी बात है?

सेल्यू०—मैंने तो यह कभी नहीं कहा।

ऐण्टी०—नहीं, तुमने नहीं कहा—तथापि संसार इसी प्रकारका अविचार करता है कि यदि मैं यह नहीं बता सकता हूँ कि मेरा पिता कौन था, तो वह मुझे जारज कहता है, मुझसे घृणा करता है और मुझे अपनेसे दूर दूर रखता है। यह ठीक है कि मैं नहीं जानता कि मेरा पिता कौन था; किन्तु जान पड़ता है कि वह ऐसा ही कोई मनुष्य रहा होगा जो तुम्हारी ही भाँति मनुष्यका चेहरा रखता होगा।—जारज! अपने जन्मके लिए मैं उत्तरदाता नहीं हूँ। हाँ, अपने कामोंके लिए मैं अवश्य उत्तरदाता हूँ। क्या तुमने कभी कोई नीच काम करते मुझे देखा है?

सेल्यू०—कभी नहीं।

ऐण्टी०—तब? नहीं, इस समय तुम्हारी प्रशंसाका मूल्य ही क्या है? कुछ भी नहीं—अब तो जो कुछ मैं तुमसे कहलाऊँगा, उसे

तुम अधम तोतेकी भाँति कहोगे ही ।—यह लो, सेल्यूकसकी कन्य भी आ गई ।

[पहरेदारोंसहित कैदी अवस्थामें हेलेनका प्रवेश ।]

हेलेन—अरे ये तो पिताजी हैं ।—पिता ! पिता ! (सेल्यूकसके गोदमें मुँह छिपा लेती है ।)

सेल्यू०—हेलेन, मेरी बेटी ! (गलेसे लगा लेता है ।)

ऐण्टी०—सम्राट्, तुम्हारा सादर सम्भाषण समाप्त हुआ या अभी नहीं ?—यदि न हुआ हो तो अब समाप्त कीजिए । मैं अपेक्षा करता हूँ । मैं इतना निष्ठुर नहीं हूँ ।—अब यही तुम दोनोंका अन्तिम साक्षात् है ।

हेलेन—अन्तिम साक्षात् ?

ऐण्टीगोनस—हाँ राजकन्या, तुम्हारे पिताको मैंने दण्ड दिया है —जिन्दगी भरके लिए अँधेरे कारागारका ।

हेलेन—जो आज्ञा विचारकर्त्ता ।

ऐण्टी०—तुमको कुछ कहना है ?

हेलेन—मुझको ?—कुछ नहीं । वीरके प्रति वीरका आचरण कैसा हो, यह वीरके लिए विचारणीय है, पर क़ैदीके प्रति जयीका व्यवहार जयीकी अभिरुचि है । इस विषयमें मैं क्या कहूँ ! मैं अनधिकार चर्चा नहीं करूँगी ।

ऐण्टीगोनस—बस यही !—सेल्यूकस, तुम्हारी पुत्री बड़ी पितृ भक्त जान पड़ती है ।

हेलेन—ऐण्टीगोनस, तुम अपनी राज्य-सम्बन्धी चर्चा करो । पिताके प्रति कन्याका स्नेह—कन्याद्वारा विचार्य है, तुम्हारे द्वारा नहीं ।

ऐंटी०—अब भी गर्व !

हेलेन—ऐण्टीगोनस, मैं जानती हूँ कि तुम मुझको इस स्थानपर क्यों लाये हो। किन्तु तुम्हारा यह प्रयत्न वैसा ही है जैसे कि एक बौनेका चन्द्रमाको छूनेका प्रयत्न। परन्तु याद रक्खो कि वह चन्द्रमाको नहीं पा सकता। इस समय तुम जयी हो, एक राज्यके अधिपति हो। यहाँ तुम्हारी जो इच्छा हो, कर सकते हो। किन्तु मेरा भी एक राज्य है। उस राज्यकी अधीश्वरी मैं हूँ। उस राज्यमें तुम्हें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।—पिताजी, जाइए, आप वीर हैं। यदि वीरका वीरके प्रति यही व्यवहार है, तो जाइए आप अँधेरे कारागारमें, कुछ परवाह नहीं। मैं भी जाती हूँ। समझ लीजिए कि मेरा अब आपसे जन्मभरके लिए विछोहा है। पिता, विदा दीजिए।—यह क्या पिता? सिर नीचा करके क्यों रह गये?

सेल्यू०—हेलेन,—नहीं।—वही हो—हम दोनों ही कारावासका दुःख भोगें।

हेलेन—पिता, इस विछोहमें हम दोनोंका दुःख बराबर है। आप नेत्रोंसे जो अन्धकार देखेंगे, मैं भी अपने नेत्रोंसे उसी अन्धकारको देखूँगी। आप भी पुरुषकी भाँति सहन कीजिए, मैं भी नारीकी भाँति सहूँगी। भय किस बातका है!—यह ऐण्टीगोनस हमारे ऊपर लाल लाल आँखें करे और क्रोध दिखावे?

ऐण्टी०—हेलेन, तुम मेरे ऊपर इतनी क्रुद्ध क्यों हो? मुझसे इतनी विमुख क्यों हो?—मेरे साथ विवाह कर लो। मैं तुम्हारे पिताका क्रीत दास होकर रहूँगा। उन्हींको फिर इस सिंहासनपर बिठाऊँगा। हेलेन, प्रसन्न होओ, मैं यह सिंहासन छोड़े देता हूँ।

हेलेन—(व्यंग्यपूर्वक हँसकर) ऐण्टीगोनस, तुम बड़े मूर्ख हो! प्रलोभन दिखाकर नारीका हृदय जीतना चाहते हो! नारीका धर्म—जो

प्रभात-सूर्यसे भी अधिक भास्वर, मृत्युसे भी अधिक प्रबल और माताके स्नेहसे भी अधिक पवित्र है—उस नारी-धर्मको तुम यह मुट्ठीभर धूल देकर मोल लेना चाहते हो! बड़ी स्पर्धा है!—जाओ, मैं तुमसे घृणा करती हूँ!

ऐण्टी०—अच्छा!—सेल्यूकस, अब मेरा अपराध नहीं।—पहरेदार, इन दोनोंको दो अन्धकूपोंमें डाल दो—ले जाओ।

(दो पहरेदार सेल्यूकस और हेलेनको पकड़ लेते हैं।)

हेलेन—पिताजी, बिदा दीजिए।

सेल्यूकस—"हेलेन!"—(सिर नीचा करके आँखें पोंछता है।)

हेलेन—यह क्या पिताजी, आपकी आँखोंमें आँसू? आप तो वीर पुरुष हैं, आप भी इस दुःखके भारसे झुक गये? यह मैं नहीं सह सकती हूँ। मैं बालकको भूखा, वृद्धको अपमानित, रोगीको परित्यक्त, और मृतदेहको पदाहत, ये सब मर्मभेदी दृश्य देख सकती हूँ; पर आपकी आँखोंमें आँसू नहीं देख सकती।—पिताजी, तो अब वही हो, जो ऐण्टीगोनसकी इच्छा है। आपके लिए मैं क्या नहीं कर सकती हूँ! प्रसन्नतापूर्वक अपनी इच्छासे मैं अपनी बलि दे दूँगी! किन्तु पिताजी, आपने यह क्या किया! क्या किया! लज्जासे पृथ्वीमें मुख छिपा लेनेकी इच्छा होती है। मैं जली जाती हूँ।—ओह!—अस्तु।—ऐण्टीगोनस,—मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगी। मैं तुम्हारी क्रीत दासी हूँ। (घुटने टेककर) पिताजीको छोड़ दो।

सेल्यूकस—नहीं, यह नहीं होगा हेलेन। इसकी अपेक्षा मैं नरकमें जानेको तैयार हूँ। कन्याको देकर मैं अपना छुटकारा मोल नहीं लूँगा। मैं यूनानी हूँ। यह केवल एक क्षणिक दौर्बल्य था—चलो

सिपाही, कारागारको ले चलो—जहाँ इच्छा हो ले चलो। बेटी, मुझे बिदा दो। (बाहुवेष्टित करके) हेलेन ! हेलेन !

(दो पहरेदारोंने उनको पृथक् कर दिया। थोड़ी ही दूरतक पहरेदार उनको ले गये होंगे कि ऐण्टीगोनस सिंहासनसे नीचे कूद पड़ा और बोल उठा—)

ऐण्टीगोनस—ठहरो (सिपाही, दोनों बन्दियों सहित खड़े हो गये।) सेल्यूकस ! जाओ, तुमको छोड़ दिया। तुम मुक्त हो।—जारज होने पर भी मैं यूनानी हूँ। महत्त्वको समझता हूँ।—यह केवल सुन्दर ही नहीं, स्वर्गीय दृश्य है। फिडियस भी इससे अधिक सौन्दर्यकी कल्पना नहीं कर सका है। मैं कठोरहृदय हूँ, परन्तु इस अपूर्व दृश्यको देखकर मेरी आँखोंमें भी आँसू भर आये।—हे महिमामय भगवन् ! हेलेन, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। सेल्यूकस, यह सिंहासन तुम्हारा है।— (प्रस्थान।)

चतुर्थ दृश्य।

स्थान—युद्धका मैदान।

समय—संध्या।

[स्त्रियोंके शिविरके सम्मुख छाया और उसकी सहचरीं।]

छाया—इस युद्धका फलाफल जाननेके लिए मैं अधीर हो रही हूँ। दूरसे केवल युद्धका कोलाहल ही सुन रही हूँ, फिर भी युद्धकी पिपासासे मेरी छाती फटी जाती है।

१ सहचरी—राजकुमारी, तुम्हें इतनी युद्धतृष्णा क्यों है ?

छाया—मैं उनको यह दिखलाना चाहती हूँ कि मैं उनके अयोग्य नहीं हूँ।

१ सहचरी—किनको ?

छाया—चन्द्रगुप्तको।

२ सहचरी—उनपर मर रही हो !

छाया—क्यों ?

२ सहचरी—चन्द्रगुप्तसे प्रेम करती हो ?

छाया—प्रेम करती हूँ या नहीं, सो तो मैं नहीं जानती; हाँ इतना जानती हूँ कि सोते-जागते उन्हींमें मेरा ध्यान रहता है। जानती हो, कल रातको मैंने क्या स्वप्न देखा था ?

२ सहचरी—नहीं, बतलाओ तो क्या स्वप्न देखा था ?

छाया—स्वप्नमें मैंने देखा कि मानों मैं आकाशमें धीरे धीरे ऊँची उठी जा रही हूँ और नीचे पदतलमें केवल दो वस्तुयें देख रही हूँ—एक तो पृथ्वी और दूसरी वस्तु चन्द्रगुप्त। फिर और भी अधिक आकाशमें ऊँची उठी, पृथिवी क्रमसे छोटी होने लगी। अन्तमें वह दृष्टिसे लुप्त हो गई और अकेले चन्द्रगुप्त सूर्यकी भाँति चमकने लगे।

२ सहचरी—कहती हूँ कि तुम मर रही हो !

छाया—काहेसे ?

२ सहचरी—इसी रोगसे !

छाया—किस रोगसे ?

२ सहचरी—इसी प्रेम-रोगसे।

छाया—तो क्या इसको रोग कहते हैं ?

२ सहचरी—यह रोग तो है ही !

छाया—तो मैं इसी रोगसे मरूँ, इससे बढ़कर सुखकी मृत्यु मैं नहीं चाहती।

[चन्द्रकेतुका प्रवेश।]

छाया—दादा, युद्धका क्या संवाद है ?

चन्द्रकेतु—मेरा घोड़ा मारा गया, दूसरा घोड़ा चाहिए।

(प्रस्थानके लिए उद्यत होता है ।)

छाया—युद्धका संवाद क्या है ?

चन्द्रकेतु—हम लोगोंकी हार ।

छाया—हार ?—दादा, चन्द्रगुप्त कहाँ हैं ?

चन्द्रकेतु—वे संकटमें हैं । मैं उनकी सहायताको जा रहा हूँ ।

छाया—ठहरो, मैं भी चलूँगी, मेरा घोड़ा तैय्यार करनेको कह दो ।

चन्द्रकेतु—अच्छा, चलो, तुम भी चलो । (प्रस्थान ।)

छाया—(सहचरियोंसे) जाओ, तुम लोग शिविरकी रक्षा करो ।

(सहचरियोंका प्रस्थान ।)

छाया—भगवन् ! अब यदि सुयोग मिला है, तो बस यही वर दो कि मैं कृतकार्य हो जाऊँ । वे संकटमें हैं, मैं उनकी प्राण रक्षा कर सकूँ और इसमें यदि प्राण देने पड़ें तो हँसते हुए प्राण दे दूँ । वे यदि प्राण-रक्षाके बदले एक बार—केवल एक मुहूर्तके लिए प्रेम करें, केवल एक बार हँसकर मेरी ओर देख लें, तो मेरी मृत्यु सार्थक हो जायगी ।

[दो घोड़े लिये हुए चन्द्रकेतुका प्रवेश ।]

चन्द्रकेतु—छाया, घोड़ा तैय्यार है ।

छाया—चलो दादा, (घुटने टेककर) महेश्वरी ! जिस शक्तिके बलसे तुमने दानवोंको जीता था, उसी शक्तिका एक कण मुझे भी दे दो मा !—चलो दादा !

(घोड़ोंपर चढ़कर दोनोंका प्रस्थान ।)

मुरा—यह क्या ?

चाणक्य—वह चन्द्रगुप्त आ रहा है, तुम्हें रोना होगा।

मुरा—बेटा! बेटा! (आगे बढ़ने लगी।)

चाणक्य—खबरदार! इस समय स्नेह नहीं—इस समय तुम्हें तीव्र भर्त्सना, गरम आँसू, पुत्रके ऊपर माताका अभिमान, इन सबका अभिनय करना होगा!—कहो, तैय्यार हो ?

[नीचा सिर किये और खुली तलवार लिये चन्द्रगुप्तका प्रवेश।]

चाणक्य—यह देखो चन्द्रगुप्त है!—मुरा, चन्द्रगुप्त युद्धमें जय लाभ करके आया है, इसे अपनी छातीसे लगाओ। यह तुम्हारा वीर पुत्र है। उत्सव करो।

चन्द्रगुप्त—नहीं गुरुदेव, मैं जय लाभ करके नहीं आया हूँ।

चाणक्य—यह क्या!—तो ?

चन्द्रगुप्त—मैं युद्धक्षेत्रसे भाग कर आ रहा हूँ।

चाणक्य—यह कैसे! असम्भव! मुराका पुत्र युद्धक्षेत्रमें जय लाभ करेगा या प्राण देगा, भागेगा नहीं।

मुरा—भागे आ रहे हो!—चन्द्रगुप्त, इस बातको तुम बड़े स्थिर चित्तसे कह रहे हो! भाग आये हो! मर नहीं सके ?—भीरु!

चाणक्य—नहीं नहीं, यह क्षणिक दौर्बल्य था। जाओ चन्द्रगुप्त, युद्ध करो।

चन्द्रगुप्त—नहीं, मुझसे यह नहीं हो सकेगा। (तलवार चाणक्यके पैरोंके पास रख दी।)

चाणक्य—क्या नहीं हो सकेगा ?

चन्द्रगुप्त—भाईके गातपर अस्त्रघात।

मुरा—कापुरुष!

चन्द्रगुप्त—कापुरुष नहीं हूँ—वह मेरा भाई है ।

चाणक्य—जिस भाईने तुमको निर्वासित किया था ?

चन्द्रगुप्त—तो भी वह भाई है ।

मुरा—जिस भाईने तुम्हारी माताका अपमान किया था ?—क्यों, चुप क्यों हो रहे ?

चाणक्य—जिसका राजत्व दौरात्म्यका नामान्तर मात्र है !

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, क्या आप भ्रातृ-विरोधकी आज्ञा दे रहे हैं ?

चाणक्य—हाँ, धर्मयुद्धमें । कुरुक्षेत्रके युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णने क्या कहा था ?

चन्द्रगुप्त—क्षमा कीजिए गुरुदेव, श्रीकृष्णकी युक्ति मेरे हृदयको स्पर्श नहीं करती ।

चाणक्य—(आवेगसे पैर पटककर) इसी पापसे तो आर्यावर्त नष्ट हो गया । चन्द्रगुप्त, गीताका माहात्म्य तुम क्या समझो !—शास्त्रचर्चा-पर ब्राह्मणका अधिकार है, तुम्हारा नहीं ।

चन्द्रगुप्त—ब्राह्मणका अधिकार ब्राह्मण भोगे, मुझे विदा दीजिए ।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, तुम्हारी यह दुर्बलता मैं बीच बीचमें बराबर देखता आ रहा हूँ। अन्य समयमें इस दुर्बलतासे विशेष हानि नहीं होती । शुष्क नैराश्यमें पड़े पड़े दिनके अलस प्रहर बिताते रहो, गरम गरम आँसुओंसे रात्रिमें तकिया भिगोते रहो, इससे कुछ विशेष हानि नहीं होती । समय समयपर रोना भी एक प्रकारका विलास है । परन्तु कर्म-क्षेत्रमें खड़े होने पर ऐसी दुर्बलता बड़ी ही सांघातिक होती है । यह भौंचा-लकी भाँति उठकर एक पलभरमें शताब्दियोंकी रचनाको मिट्टीमें मिला देती है । चन्द्रगुप्त, घड़ी भरमें जीवन भरकी साधनाको निष्फल

मत कर डालो। इस आलस्यको जीर्ण वस्त्रकी भाँति अपने हृदयसे अलग कर दो। युद्धमें अग्रसर होओ।

चन्द्रगुप्त—मुझे क्षमा कीजिए गुरुदेव !

मुरा—चन्द्रगुप्त, क्या वास्तवमें तुम मेरे पुत्र हो !!! जो नन्द—

चन्द्रगुप्त—उसको क्षमा कर दो मा !

मुरा—क्षमा ! सर्वांगमें फैली हुई सौ बिच्छुओंके डंक मारनेकी इस ज्वालाको केवल एक वस्तु शीतल कर सकती है और वह है एक—नन्दका रक्त !

चन्द्रगुप्त—मा, मैं बचपनमें उसके साथ कितना खेला करता था; उसके लिए कितने खिलौने ला-लाकर देता था; तुमसे मिठाई पाकर आधी बाँटकर अपने हाथसे नन्दको खिला देता था; पिताके तिरस्कारसे उसकी आँखोंसे निकलते हुए आँसुओंको चुम्बन करके पोंछ देता था। एक दिन एक बिगड़ा हुआ घोड़ा भागा जारहा था, नन्द उसके सम्मुख पड़ गया, मैंने आसन्नविपत्ति देखकर उसको अपनी छातीसे लगाकर अपने शरीरसे उसका शरीर ढक लिया और घोड़ेकी लात अपनी पीठपर सह ली। आज युद्धक्षेत्रमें जब उसी कोमल तरुण चमकते हुए मुखको देखा, तो वे ही सब पुरानी बातें एक साथ याद आगईं। उसके मस्तक-पर तलवार चलानेका उद्योग करते ही पिताका रक्त उछलकर हृत्पिण्डमें आ कूदा और पञ्जरके द्वारपर जोरसे आघात करके चिल्ला उठा—"सावधान चन्द्रगुप्त ! यह भाई है !—मगधका साम्राज्य क्या भाईसे भी बड़ा है ?"

मुरा—नन्द तुम्हारा तो भाई है, किन्तु मेरा कौन है ?

चन्द्रगुप्त—नन्द तुम्हारा पुत्र है। मा, गर्भमें धारण न करनेसे ही क्या वह पुत्र नहीं रहा ? नन्दकी माताकी मृत्यु होनेके अनन्तर उसकी

मातृस्वरूपिणी होकर क्या तुमने उसको बड़ा नहीं किया ? क्या तुमने उसको अपने स्तनोंका दूध नहीं पिलाया ? छातीपर लिटाकर क्या उसको नहीं सुलाया ?

मुरा—इन्हीं कारणोंसे तो मैं उसको क्षमा नहीं कर सकती । इन सब बातोंको नन्द भूल सकता है और भूल गया है, किन्तु मैं नहीं भूल सकती !—जिस समय अधम वाचालने मेरे केश पकड़कर खींचे—और नन्दने ' शूद्राणी मा ' कहकर ताना मारा—उस समयकी बात बेटा, क्या कहूँ—ऊः !—तुम्हारे निकट क्या माताका अपमान कोई चीज ही नहीं है ? मा तुम्हारी कोई भी नहीं है ?

चाणक्य—एक माताके गर्भसे जन्म होता है, इसीसे तो भाईके साथ भाईका सम्बन्ध होता है ।—तब माता बड़ी हुई या भाई ? जगतमें यही पहला उदाहरण है कि पुत्र अपनी माताके अपमानका बदला लेनेसे इन्कार करता है !—(मुराके प्रति) अभागिनी नारी ! रोओ रोओ । यही तुम्हारा बेटा है, जो माको नहीं पहचानता !—नहीं जानता है कि जगतमें जितनी पवित्र वस्तुयें हैं, वे माके सामने कुछ भी नहीं हैं !

चन्द्रगुप्त—यह मैं जानता हूँ गुरुदेव !

चाणक्य—नहीं, नहीं जानते ! अगर जानते होते तो माताके अपमानका बदला लेनेसे यों हिचकते ? यह वही मा है—जिसके साथ एक दिन एक अंग थे—एक प्राण, एक मन, एक निःश्वास, एक आत्मा—जैसे कि सृष्टि एक दिन विष्णुकी योगनिद्रामें अभिभूत थी, तदनन्तर अग्निके स्फुलिंगकी भाँति, संगीतकी मूर्च्छनाकी भाँति, चिरंतन पहेलीके प्रश्नकी भाँति पृथक् हो गई । यह वही मा है—जिसने

देहके रक्तको निकालकर चुपचाप, एकान्तमें, हृदयकी कढ़ाईमें चढ़ कर स्नेहके उत्तापसे गरम करके सुधा तैयार की और तुम्हें पान करा जिसने तुम्हारे ओठोंको हँसी दी, जिह्वाको भाषा दी और जिसने तुम्हे ललाटमें आशीषयुक्त चुम्बन देकर तुम्हें संसारमें पठाया। यह व मा है—जो रोगमें, शोकमें, दैन्यमें, दुर्दिनमें, तुम्हारे दुःखको अप छातीपर ओढ़ ले सकती है, तुम्हारे म्लान मुखको उज्ज्वल देखने लिए जो अपने प्राण तक दे सकती है, जिसके स्वच्छ स्नेहकी मन्दा किनी इस शुष्क तप्त मरुभूमिपर शतधारासे उच्छ्वसित होकर जा है, बह चलती है। यह वही मा है—जिसकी अपार शुभ्र करुण मानव-जीवनमें प्रभातकालीन सूर्यकी भाँति मधुर किरणें फैलाती है वितरणमें कंजूसी नहीं करती, विचार नहीं करती, बदला नहीं चाहती उन्मुक्त, उदार कम्पित आग्रहसे अपनेको दोनों हाथोंसे सन्तानके लि विलीन करना चाहती है;—चन्द्रगुप्त, यह वही मा है !

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, रक्षा कीजिए। मुझे भ्रातृवधके लिए उत्तेजि मत कीजिए।

मुरा—चन्द्रगुप्त, इतने दिनोंके पश्चात् आज मैंने जान पाया कि मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ। नन्द क्षत्रिय है, तुम क्षत्रियकुमार हो। नन्द ही तुम्हारा भाई है। मैं शूद्राणी हूँ। मैंने तुम्हें केवल गर्भमें धारण किया था। मैं कौन हूँ ? मैं तुम्हारी मा नहीं हूँ।

चन्द्रगुप्त—पुत्रके ऊपर तुम इतनी निठुर हो सकती हो मा ! तुम मेरी मा नहीं हो ? तुम केवल मेरी मा ही नहीं हो, तुम मेरा धर्म, तुम मेरी साधना, और तुम मेरी ईश्वरी हो। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए दैववाणी है।

मुरा—यदि यह सत्य है, तो युद्धके लिए तैयार होओ !—यह क्या ! फिर भी चुप हो !—चन्द्रगुप्त ! (भग्न स्वरमें) मैं तुम्हारी मा हूँ, तुम्हारी अपमानित, प्रपीड़ित, और पदाहत मा हूँ। मेरी तो यही आज्ञा है।—आगे जैसी तुम्हारी इच्छा।

चन्द्रगुप्त—तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है। अब और दुबिधा नहीं है। तुम्हारी आज्ञा ही इस प्रश्नसंकुल कुटिल जगतमें मेरी पथ-प्रदर्शक हो। मैं इस संसारमें तुमको ही अपने जीवनका ध्रुवतारा बना-कर बिना इधर उधर देखे, संसार-सागरमें अपनी नौका खेता हुआ चला जाऊँ।—मा, आशीर्वाद दो। मैं इसी क्षण युद्धमें जाता हूँ।

मुरा—यही तो मेरा बेटा है।

चाणक्य—यही तो मेरा शिष्य है। इस क्षणिक अवसादको अपने चित्तसे दूर कर दो। एक वार बलपूर्वक—

नेपथ्यमें—इसी ओर इसी ओर—

चाणक्य—यह लो, वे लोग आ रहे हैं। यहीं आ रहे हैं। उठो वत्स, उठो, मेघनिर्मुक्त सूर्य्यकी भाँति द्विगुण तेजसे चमक उठो। यह सुनो नरसिंहेकी ध्वनि। तुम्हारी सेना भी आ रही है। डर नहीं है। अकेला चन्द्रगुप्त सौ नन्दोंके बराबर है। किसीकी यह शक्ति नहीं कि मेरे शिष्यको परास्त कर सके। वह देखो (अंगुलीसे इङ्गित करके), चन्द्रकेतु सेनासहित तुम्हारी सहायताको आ रहा है।

निकटतर नेपथ्यमें—इसी जंगलके भीतर।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त दृढ़ होओ।—आओ मुरा, चलें—जयोस्तु।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[दूसरी ओरसे चार सिपाहियों सहित नंगी तलवार लिये हुए नन्दका प्रवेश।]

नन्द—ए कायर, तू यहाँ है ! (आक्रमण करता है।)

आनंद होगा ? और एक मैं हूँ !—देशमें ऐसा कोई नहीं है, जिसका मुँह मेरे उदयसे चमक उठेगा ! एक वृद्ध माता थी। बचपनमें उसने लालन-पालन किया सही, किन्तु फिर मुझे पशुकी भाँति बाजारमें बेच दिया। जगतमें ऐसा कोई नहीं जिससे मैं प्रेम करूँ, या जो मुझसे प्रेम करे। मैं देश जा रहा हूँ, किन्तु क्यों ? जैसे आतिशबाजीकी हवाईको एक महा ज्वाला सुसकारती हुई ऊपर आकाशमें उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार एक कटु व्यंग्य तीव्र वेगसे मुझे स्वदेशको लिये जा रहा है। एक महा व्याधि—यद्यपि वह मेरी रची हुई नहीं है और न उसके लिए मैं उत्तरदाता हूँ, तथापि संसारका ऐसा ही विचार है—नहीं, इसमें संसारका भी क्या अपराध है ! स्वयं ईश्वरका भी ऐसा ही विचार है ! क्या संतान अपने पिताके पाप, दीनता और व्याधिकी भागिनी नहीं होती ? परन्तु—इन बातोंको जाने दो। अब और नहीं सोचूँगा। यदि सोचूँगा, तो पागल हो जाऊँगा। मेघ उड़े आ रहे हैं, आँधी उठ रही है। समुद्र गरज रहा है।—जाओ, हे उच्छ्वसित नीलसिन्धु ! कल्लोल करते जाओ। मनुष्यके क्षुद्र दम्भकी उपेक्षा करते हुए, कालकी भृकुटिको तुच्छ समझते हुए, अनन्त आकाशके संग अंग मिलाते हुए, सृष्टिके अनादि संगीतको गाते हुए, मृदु मन्द आन्दोलनके साथ पृथ्वीके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक दौड़ते रहो। तुम स्वाधीन उन्मुक्त उदार हो। सृष्टिके महाविवर्तनके मध्यमेंसे होकर युग-युगान्तरसे तुम एक ही भावसे चले जारहे हो। ऊपर उन्मुक्त नीलाकाश है, और नीचे तुम उसकी स्वच्छ प्रतिच्छवि हो। चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रमण्डलको तुम अपने अगाध हृदयमें प्रतिबिम्बित करो। उन्मत्त आँधीके संग उछलती हुई तरंग-भंगोंसे तुम अपनी दानवी क्रीड़ा किये जाओ। क्षुब्ध और गंभीर गर्जनसे वज्र ध्वनिका उत्तर देते रहो। रात्रिमें उफनते हुए पिंगल फेनद्वारा विद्यु-

तृका उपहास करते रहो। प्रबल आँधीके अवसानमें फिर निर्म्मल आकाशकी भाँति तुम नील, स्थिर, मौन, उदार और गंभीर हो जाते हो। अतएव हे भीम! हे कान्त! हे अबाध अगाध समुद्र! तुम अपने उद्दाम, प्रमत्त, अन्ध विक्रमसे जाओ वीर! चिरदिन समभावसे कल्लोल करते जाओ।

द्वितीय दृश्य ।

स्थान—कारागार ।

समय—रात्रि

[नन्द और वाचाल एक कमरेसे निकलकर बाहर आते हैं। नन्द चिन्तामग्न है।]

नन्द—इस कोठरीमें बड़ा अँधेरा है—

वाचाल—अन्धकार है तो होने दो, कीड़ोंसे तो जान बची—तिलचट्टोंसे तो बचे।

नन्द—क्या यह वही कोठरी है, जिसमें मैंने कात्यायनको बंदी करके रक्खा था?

वाचाल—हाँ महाराज।

नन्द—कितनी डरावनी है?

वाचाल—और इसी कोठरीमें उसके सातों बेटोंको भूखे रखकर मारा था, महाराज!

नन्द—मुझे इसका पश्चात्ताप होता है।

वाचाल—होता है महाराज? तब तो फिर और कोई भय नहीं है।

नन्द—यह कैसे कहें कि भय नहीं है। पर यह अवश्य है कि चन्द्रगुप्त मेरा वध नहीं करेगा। यदि करेगा, तो वही शीर्ण, भृकुटि-

कुटिल, प्रतिहिंसापरायण ब्राह्मण। उस दिन वह ब्राह्मण मेरी ओर ऐसे देखता था जैसे सिंह अपने नखोंसे घायल किये हुए शिकारके प्रति लोलुप दृष्टिसे देखता है।

वाचाल—तो फिर भय कहेका है ?

नन्द—वाचाल, क्या तुम्हें डर नहीं लगता ?

वाचाल—जरा भी नहीं, कुछ भी नहीं। बहुत हुआ तो वे लोग आपका वध करेंगे। इससे अधिक तो कुछ कर नहीं सकते। इससे मुझे काहेका भय ? मेरी भगिनी विधवा हो जायगी, बस इतना ही।

नन्द—हूँ! तो तुम क्या यह सोचते हो कि वे लोग मेरा वध करेंगे और तुम्हें छोड़ देंगे !

वाचाल—महाराजका अनुमान ठीक है।

नन्द—ऐसा मत समझो।

वाचाल—ऐं—!

नन्द—तुमने चन्द्रगुप्तकी माताके बालोंको पकड़कर खींचा था।

वाचाल—ऐं—खींचा था ?

नन्द—तुमने चाणक्य पण्डितको चोटी पकड़कर घसीटा था।

वाचाल—कब ?—नहीं तो !

नन्द—इसके अतिरिक्त तुम मेरे साले हो।

वाचाल—सच क्या !

नन्द—मुझे तो चाहे छोड़ भी दें, परन्तु तुम्हें वे न छोड़ेंगे।

वाचाल—ऐं—(हाथ जोड़कर) महाराज !

नन्द—मेरे सामने हाथ क्यों जोड़ते हो—

वाचाल—यह तो स्वभाव हो गया है।—किन्तु मैं कुछ नहीं जानता हूँ। (काँपता है।)

नन्द—डरते क्यों हो ?—वध ही तो करेंगे !

वाचाल—इसका मतलब ?

नन्द—तुम्हींने तो अभी कहा था कि बहुत हुआ तो वध करेंगे। मैं तो केवल तुम्हारा ही कथन दुहरा रहा हूँ।

वाचाल—मुझे याद नहीं कि मैंने ऐसा कहा था।

नन्द—यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हारी स्मरणशक्ति तुम्हारे ही अधीन है। जिसको चाहो भूलो, जिसको चाहो याद रक्खो। अरे अभी अभी तो तुमने कहा था !

वाचाल—कब ?—अच्छा यदि कहा भी होगा, तो मेरा आशय यह नहीं था।

नन्द—तुम्हारा वध तो करेंहीगे।

वाचाल—(हाथ जोड़कर) ना महाराज।

नन्द—अवश्य करेंगे।

वाचाल—विधवा हो जायगी।

नन्द—तुम्हारे मारे जानेसे कौन विधवा हो जायगी ? तुम्हारे स्त्री तो है ही नहीं !

वाचाल—हायरे ! इस समय एक स्त्री भी नहीं, जो विधवा हो जाती !

नन्द—तुम्हारे लिए कोई रोनेवाला नहीं है।

वाचाल—किन्तु महाराज, यह तो जाने रहिए कि यदि स्त्री होती तो अवश्य रोती।

नन्द—इस आसन्न-विपत्तिके समय भी तुम्हारे मसखरेपनसे मुझे हँसी आ जाती है।

वाचाल—यह याद रखिएगा महाराज, कि 'हँसी आ जाती है'।

नन्द—महाराणीको तुम युद्धके पहले ही मंत्रीके आश्रयमें रख आये थे न ?

वाचाल—हाँ महाराज, रख आया था।

नन्द—वह काहेका शब्द है ?—वाचाल !

वाचाल—(काँपते हुए) जान पड़ता है कि कोई आरहा है, द्वार खुल रहा है !

[दो पहरेवालोंके साथ कात्यायनका प्रवेश ।]

कात्यायन—महाराज !

नन्द—विश्वासघातक मंत्री !

कात्यायन—मैं विश्वासघातक हूँ ?

नन्द—बचपनहीसे मेरे पिताके अन्नसे पुष्ट होकर—

कात्यायन—वे तुम्हारे पिता थे और चन्द्रगुप्तके भी पिता थे। तुम्हारे पिताके विरुद्ध महाराज, मैंने कोई काम नहीं किया। मैंने उनके एक पुत्रके विरुद्ध दूसरे पुत्रका पक्ष लिया है।

नन्द—हाँ, उनके दासीपुत्रका पक्ष लिया है। तुम्हें लज्जा नहीं आती ब्राह्मण,—जो तुमने और चाणक्यने—दो ब्राह्मणोंने आर्य और द्विज होकर भी षड्यन्त्र रचकर अनार्य्य पहाड़ी सेनाकी सहायता लेकर एक क्षत्रियको सिंहासनच्युत करके उसके पिताके दासीपुत्रको सिंहासनपर बिठाया है ! एक शूद्र—जारज शूद्र—आज मगधके सिंहासनपर आरूढ़ है ! अहो, कैसा दुर्दैव है ! यही तुम्हारी कीर्ति है !—यह क्या ! नीचा मुख कर लिया तुमने, विश्वासघातक !

कात्यायन—नन्द, मैं सदासे विश्वासघातक नहीं था। तुम्हींने मुझे विश्वासघातक बनाया है। तुमने मेरे निरीह पुत्रोंको कारागारमें डालकर उनका वध किया। मैंने अपनी इस वृद्ध क्षीण दृष्टिके सम्मुख

उनको, इसी कोठरीमें—इसी अन्धकारमें, एक एक करके भूखसे सूख-सूखकर मरते देखा है। मेरा प्रत्येक पुत्र मरनेके पहले अपने मुट्ठी-भर खाद्य पदार्थका शेषांश मुझे देता गया है, मरनेके पहले तुम्हें शाप देता गया है और मुझसे कहता गया है कि 'पिता, इस अत्याचारका बदला अवश्य लेना।' संतानके लिए वृद्ध पिताको जो व्यथा होती है, उसे तुम कैसे समझ सकते हो नन्द! जिस समय सघन होते हुए अन्धकारमें यह संसार लुप्त होने लगता है, उस समय इस जगतका भविष्यत् अकेला यह पुत्र ही उस वृद्ध पिताकी आँखोंके आगे चमकता रहता है। अपनी कीर्ति अकीर्ति, सम्पत्ति और दारिद्र्य, पुण्य और पाप—इस जगतमें जो कुछ उसका है सो सब—अपने पुत्रहीको वह दे जाता है। और तुमने मेरे ऐसे ऐसे सात पुत्रोंको छीन लिया है। मेरे भविष्यतको तुमने एक शून्य नैराश्यमें और हाहाकारमें परिणत कर दिया है।—अरे, वे तो तुम्हारे ही साथ खेला करते थे, उन्होंने तो तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया था।

नन्द—(कुछ सोचकर) ब्राह्मण, मैंने अन्याय किया। घोरतर अन्याय किया। पर मैं स्वयं इतना पापी नहीं था, संगदोषने मुझे पापी बना दिया था।

कात्यायन—महाराज, तुम इतने निष्ठुर कैसे हो गये! तुम तो मेरी आँखोंके सामने ही इतने बड़े हुए हो, तुमको तो मैंने गोदमें लेकर पीठपर चढ़ाकर आदमी बनाया था। इतने निष्ठुर तुम कैसे हो गये?

नन्द—मुझे क्षमा करो, ब्राह्मण।

कात्यायन—जाओ नन्द, तुमको क्षमा किया। किन्तु अब मैं संसारका त्याग करूँगा और संन्यासी हो जाऊँगा।

वाचाल—यह आपका प्रस्ताव अति उत्तम है। इस संसारमें बड़े झगड़े हैं।—इसमें न रहना ही अच्छा है।—तो हम लोग अब मुक्त हैं?

कात्यायन—तुम लोगोंको मुक्त करनेका मुझे अधिकार नहीं है। हाँ, मैं चाणक्य मंत्रीसे अनुरोध करूँगा।

नन्द—वही दुबला पतला चाणक्य ब्राह्मण आज मंत्री है ?

कात्यायन—केवल मंत्री ही नहीं, वह महाराज चन्द्रगुप्तका गुरु भी है।

नन्द—शूद्र चन्द्रगुप्त महाराज ! भिक्षुक चाणक्य मंत्री ! और—सेनापति कौन है ?

कात्यायन—मलयराज चन्द्रकेतु।

नन्द—खूब !—ब्राह्मण, तुम्हारे ऊपर मैंने अत्याचार किया है। तुमसे क्षमा माँगते मुझे आगा पीछा नहीं, लज्जा नहीं। किन्तु इस शूद्र चन्द्रगुप्त और शूद्राणी मुरासे मैं घृणा करता हूँ। यदि छुटकारा पाऊँ तो—

कात्यायन—मैं आपके छुटकारेके लिए अनुरोध करूँगा।

वाचाल—जी, मंत्री महाशय, मेरे लिए भी थोड़ासा अनुरोध कर देना।

कात्यायन—वाचाल, तुम स्वयं चल करके अनुरोध कर लो। मंत्री चाणक्यने तुमको बुला भेजा है।

वाचाल—हाय दैय्यारे !

कात्यायन—मैं तुम्हें बुलानेहीके लिए आया हूँ।

नन्द—वाचालसे उनका क्या प्रयोजन है ?

कात्यायन—यह मैं नहीं जानता हूँ।—आओ, वाचाल।

वाचाल—जी—(रोते हुए) महाराज—

नन्द—मैं भला क्या कर सकता हूँ ! मैं स्वयं भी आज तुम्हारी ही भाँति क़ैदी हूँ। जाओ—

वाचाल—जी—उसका ध्यान आते ही मेरा हृदय काँपने लगता है। उसके पास जाऊँगा कैसे ?

कात्यायन—आओ, वाचाल, कोई भय नहीं है ।

वाचाल—भरोसा भी नहीं है ।

कात्यायन—आओ चलो ।

वाचाल—चलिए । (कात्यायनसहित वाचालका प्रस्थान ।)

नन्द—यह दासीपुत्र आज मगधके सिंहासनपर है ।—यदि छुटकारा पाऊँ तो—(दूसरी कोठरीमें चला जाता है ।)

तृतीय दृश्य ।

स्थान—चाणक्यकी कुटीरका भीतरी भाग ।

समय—रात्रि ।

[अकेला चाणक्य]

चाणक्य—अब लौट जाऊँगा । परन्तु कहाँ ? निश्चिन्त आलस्यमें ? निष्कर्म नैराश्यमें ?—नहीं, वह सड़ा हुआ, गरम और असह्य है । उससे तो यही अच्छा है । इसमें प्रतिहिंसाकी तीव्र ज्वाला है, उत्तेजनाकी कटु उन्मादना है, पतनका एक निश्चिन्त लक्ष्य है । या तो स्वर्ग मिलेगा या नरक । विधाताने यदि मुझे स्वर्गसे भ्रष्ट किया है तो—नरकमें जाऊँगा । ईश्वर! यदि तुमने अपने पक्षमें नहीं लिया है, तो मैं तुम्हारे विपक्षमें छाती फुलाकर खड़ा होऊँगा । तुम्हें जो करना हो करो ।—नहीं, लौटूँगा नहीं ।—हाँ पिशाची ! तुम्हारा अक्षय सौन्दर्य मुझे विद्ध कर रहा है, तुम अपने पापके कवचसे मुझे आच्छादित करो । तब देखूँ, वह क्या कर सकता है । हे अदृश्य महाशक्ति ! मैंने तुम्हारे हाथ अपनेको बेच दिया है । मैं तुम्हारा प्रेमिक हूँ । मैं तुम्हारा मोल लिया हुआ दास हूँ । मैं तुम्हारे ओठोंका विष पान करके अमर होऊँगा । तुम्हारे विषाक्त

आलिंगनको छातीपर रखकर नरकमें जाऊँगा। प्यारी! छोड़ना नहीं।—मेरा हाथ पकड़े लिये चलो—और भी दूर—और भी दूर।

[वाचालके सहित कात्यायनका प्रवेश।]

चाणक्य—कौन? कात्यायन! यह कौन है?

कात्यायन—यह नन्दका साला वाचाल है।

चाणक्य—ओः!

[वाचालने बड़े भक्तिभावसे प्रणाम किया।]

चाणक्य—इस समय तो भारी भक्ति दिखला रहे हो! एक दिन तुमने मुझे चोटी पकड़ कर घसीटा था।—याद है?

वाचाल—कहाँ?—नहीं तो। (पीछेको देखने लगा)

चाणक्य—ओह! याद नहीं आता है? अच्छा याद कराये देता हूँ। ठहरो। पहले बतलाओ कि नन्दका परिवार कहाँ है?

वाचाल—यह तो मुझे नहीं मालूम।

चाणक्य—(गुस्सेसे पैर पटककर) तुम जानते हो।

वाचाल—(प्रायः साथ ही साथ) जी हाँ, जानता हूँ।

चाणक्य—कहाँ है—?

वाचाल—(पीछेकी ओर देखने लगता है।)

चाणक्य—पीछेकी ओर क्या देखते हो?—नन्दका परिवार कहाँ है? तुम्हारी बहिन और उसके पुत्र कहाँ हैं?

वाचाल—मलयपर्वतपर।

चाणक्य—(गुस्सेसे पृथ्वीपर पैर पटककर) नहीं, झूठ है।

वाचाल—(प्रायः साथ ही साथ) झूठ है।

चाणक्य—कहाँ है? सच कहो। इनाम देंगे। नन्दका परिवार कहाँ है?

वाचाल—अपने पित्रालयमें ।

चाणक्य—कात्यायन, वहाँ सेना भेजो । तबतक इसको कारागारमें बन्द रक्खो । नन्दका परिवार मिल जानेपर इसे छोड़ देंगे । यदि न मिलेगा, तो इसको प्राणदण्ड होगा ।—जाओ ।

कात्यायन—आओ, वाचाल ।

वाचाल—प्रा–ण–द–ण्ड होगा !

चाणक्य—हाँ, वाचाल !

वाचाल—मेरी बहिन वहाँ तो नहीं है ।

चाणक्य—वाचाल, याद रक्खो, तुम काले नागके साथ खिलवाड़-कर रहे हो । सच बोलो ।

वाचाल—दुहाई धर्म्मकी !—

चाणक्य—सच कहो । यही अब अंतिम बार पूछता हूँ । नन्दका परिवार कहाँ है ?

वाचाल—मंत्रीके आश्रयमें ।

चाणक्य—(थोड़ी देर तक सोचता है; फिर धीरे धीरे कहता है)—यह बात सम्भव हो कि सत्य है । अच्छा देखता हूँ—पहरेदार !—

[पहरेदारका प्रवेश ।]

चाणक्य—जाओ, इसको बन्दी कर रक्खो । यदि यह बात सच हुई, तो छोड़ देंगे और यदि मिथ्या हुई तो—मृत्यु।—ले जाओ।

वाचाल—मुझे बड़ी प्यास लगी है । थोड़ासा पानी पिला दीजिए ।

चाणक्य—इसको उस घरमें ले जाकर पानी पिला दो ।

(पहरेदारके साथ वाचालका प्रस्थान ।)

चाणक्य—संसारमें कोई चीज व्यर्थ नहीं जाती । कूड़ा-करकटमें भी सार होता है । मल-मूत्रकी दुर्गन्धि भी पारिजातकी सुगन्धि-

में परिणत हो जाती है । हाँ, उसे जानना चाहिए ।—क्या सोच रहे हो, कात्यायन ?

कात्यायन—सोचता हूँ कि मनुष्य इतना नीच हो सकता है! अत्याचार, पीड़न, हत्या, सब कुछ सहा जा सकता है; परन्तु ऐसी कृतघ्नता—असह्य है ।

चाणक्य—मनुष्यकी इस कृतघ्नतासे ही चाणक्यकी राजनीतिका जन्म है । मैं मनुष्यकी इन्हीं कदर्य प्रवृत्तियोंसे काम लेता हूँ । मित्रको शत्रु बना देना, भाईसे भाईके गलेपर छुरी चलवाना, हिंसाको उत्तेजित कर देना और लिप्साको खाद्य देकर भड़का देना,—इसीका नाम चाणक्यकी राजनीति है । जिस समय छुरी पैनाओ, उस समय मुखसे हँसना होगा और शरबतमें विष मिलाते समय आलापसे मोहित करना होगा । इसीका नाम है चाणक्यकी राजनीति । "शठे शाठ्यं समाचरेत्।"

कात्यायन—चाणक्य, मैं प्रतिहिंसासे अंधा हो रहा हूँ, तो भी इस राजनीतिको अच्छी तरह हजम नहीं कर सकता हूँ ।—

चाणक्य—अजी सब कर सकोगे । तुमको मैं पूरा विश्वासघातक बनाकर छोड़ूँगा । शाठ्यका मैं कला-विद्याकी पद्धतिसे अभ्यास कर रहा हूँ । तुमको सब सिखा दूँगा ।

कात्यायन—किन्तु यह अन्याय है । पाणिनिका एक सूत्र है—" निर्वाणोवाते "—अर्थात्—

चाणक्य—फिर वही पाणिनि !—कहो, कौन कहता है अन्याय है!

कात्यायन—समाज ।

चाणक्य—मैं उसे नहीं मानता ।

कात्यायन—विवेक ।

चाणक्य—विवेक, यह एक कुसंस्कार है ।

कात्यायन—ईश्वर ।

चाणक्य—ईश्वर नहीं है ।

कात्यायन—चाणक्य, तुम बिलकुल पर्वतशृंगके किनारेपर खड़े हो ।—गिरोगे ।

चाणक्य—यदि गिरूँगा, तो एक प्रकाण्ड उल्कापात होगा । जगत् चौंककर देखेगा ।—इस समय जाओ, मैं सोऊँगा । तैयार रखना ।—

कात्यायन—क्या ?—

चाणक्य—यूपकाष्ठ और खड्ग ।—बलिके लिए कोई चिंता नहीं है, वह तैयार है ।

कात्यायन—किन्तु मैंने जो तुमसे कहा था—नन्दको क्या मुक्ति नहीं दी जायगी ?

चाणक्य—नहीं । जाओ, सब तैयार रहे । वह देखो मेरी प्रेयसी हँस रही हैं ।—जाओ ।

(कात्यायनने विस्मयसहित प्रस्थान किया ।)

चाणक्य—हे अदृश्य महाशक्ति ! खूब लिये जा रही हो ! बहा जा रहा हूँ ! क्या ही मधुर है तुम्हारी यह कुटिल दृष्टि, टेढ़ी हँसी, तिरछी चाल, दुर्गन्धपूर्ण निःश्वास, और मलिन स्पर्श ! मैं इन सबको छोड़-कर जानेकी इच्छा करता था ! प्रेयसी, तुम कितनी कुत्सित हो । मैं जितना ही तुमको देखता हूँ, उतना ही मुग्ध हुआ जाता हूँ। एक काला दावानल उठकर जगतके समस्त सौन्दर्यको चाट रहा है । वनका व्याघ्र अपने म्रियमाण निष्पन्द-प्राय शिकारको लोलुप ललचौंही खुली हुई आँखोंसे टकटकी लगाये देख रहा है ।—ओह ! कितना भीषण है ! कितना सुन्दर है !

चतुर्थ दृश्य।

स्थान—हिरातका राजमहल।

समय—रात्रि।

[सेल्यूकस उत्तेजित भावसे कमरेमें टहल रहा है; हेलेन खड़ी हुई है।]

सेल्यूकस—इस बार सिकन्दरशाहकी दिग्विजयको पूरी करूँगा। चन्द्रगुप्त! तुमने भारतवर्षमें स्थापित किया हुआ यूनानी उपनिवेश एक ही वर्षमें निर्मूल कर डाला! अबकी बार मैं उसका बदला चुकाऊँगा।

हेलेन—पिताजी, आप भारत जय करने जाते ही क्यों हैं? आधे एशिया महाद्वीपमें आपका साम्राज्य है। पृथ्वीभरमें आपका यश फैला हुआ है। सिन्धुनदके उसपार चन्द्रगुप्त अपना राज्य कर रहा है। वह आपकी आँखोंमें इतना क्यों खटक रहा है?

सेल्यू०—वह राज्य क्यों करेगा? वह यूनानी तो है नहीं।

हेलेन—मनुष्य तो है?

सेल्यू०—मेरी दृष्टिमें इस संसारमें केवल दो जातियाँ हैं। एक यूनानी सभ्य और दूसरी यूनानियोंको छोड़कर शेष सब जातियाँ—असभ्य।

हेलेन—पिताजी, यूनानी लोग सदासे विश्वजयी नहीं थे, और न वे सदा विश्वजयी रहेंगे। उनका सूर्य अस्त हो गया है। इस समय जो दिखाई दे रहा है, वह है उनकी उसी अतीत महिमाकी शेष म्रियमाण ज्योति।—आप हार जायँगे।

सेल्यू०—हार जायँगे! विजयी सेल्यूकस हार जायगा?

हेलेन—आप क़ैद हो जायँगे।

सेल्यू०—क़ैद क्यों हो जाऊँगा?—तुम तो मेरी बड़ी शुभचिन्तक जान पड़ती हो!

हेलेन—आप अन्याय करते हैं ।

सेल्यू०—युद्धके विषयमें मैं तुमसे दलील नहीं करना चाहता, एरिस्टफेनिसने कहा है—

हेलेन—हाँ, एरिस्टफेनिसने क्या कहा है ?

सेल्यू०—(संदिग्धभावसे) यही कि स्त्रीजातिके साथ दलील करना उचित नहीं है ।

हेलेन—कहाँ कहा है एरिस्टफेनिसने ? मैं अभी एरिस्टफेनिसकी पुस्तकावली लिये आती हूँ । (प्रस्थानके लिए उद्यत ।)

सेल्यू०—नहीं नहीं, एरिस्टफेनिस नहीं, थेमिस्टक्लिस ।

हेलेन—थेमिस्टक्लिस तो राजनीतिज्ञ था, वह इस विषयमें क्या कहेगा !

सेल्यू०—तो सेफोक्लिस होगा ।

हेलेन—सेफोक्लिसके ग्रन्थ लिये आती हूँ । जरा पिताजी दिखा तो दीजिए कि सेफोक्लिसने यह बात कहाँ कही है । (प्रस्थान ।)

सेल्यू०—मिट्टीमें मिला दिया । ठीक बात तो यह है कि एरिस्ट-फेनिस और सेफोक्लिस दोनोंहीमें मेरी समान व्युत्पत्ति है—मैंने दोनोंको ही नहीं पढ़ा । मत तो मेरा ही है, परन्तु दो एक बड़े आदमियोंके नाम जोड़ देनेसे बातका माहात्म्य बढ़ जाता है ।—लड़की तो यह सब पढ़ चुकी है और इसपर कहती है कि अब संस्कृत पढूँगी। अरे वह आ रही है । तो अब भाग जाना ठीक है । (प्रस्थान ।)

[चार पाँच पुस्तकें लिये हुए हेलेनका प्रवेश ।]

हेलेन—ऐं, पिताजी कहाँ हैं ?—अरे वे तो हैं। भागनेसे नहीं छोड़ूँगी, दिखा देना होगा । छोड़ूँगी नहीं ।

[पुस्तकोंको नीचे रखकर प्रस्थान और सेल्यूकसका हाथ पकड़कर प्रवेश ।]

हेलेन—बैठिए। सेफोक्लिसने वह बात कहाँ कही है, सो बतला दीजिए।

सेल्यू०—यह क्या जबरदस्ती है! मैं नहीं दिखाऊँगा। जाओ, क्या करोगी?

हेलेन—तो फिर कहा क्यों था?

सेल्यू०—मेरी खुशी। तुम बड़ी अवाध्य लड़की हो। तुम मुझसे स्नेह नहीं करतीं।

हेलेन—पिता, मैं तुमसे स्नेह नहीं करती हूँ? यह बात भी आप कह सकते हैं!—आपका एक बूँद आँसू पोंछनेके लिए मैं अपना सर्वस्व दे सकती हूँ।

सेल्यू०—नहीं हेलेन, मेरी ग़लती हुई। मुझे माफ़ करो।

हेलेन—नहीं पिता, अपराध मेरा है। मैं आपसे स्नेह नहीं करती—आप मुझे माफ़ कीजिए।

सेल्यू०—नहीं बेटी, मेरा अपराध है। तुम मुझसे खूब स्नेह करती हो।

हेलेन—(हँसकर) किन्तु सेफोक्लिसने क्या इस विषयमें कुछ नहीं कहा है?

सेल्यू०—नहीं।

हेलेन—अच्छा तो अब कोई तर्क-वितर्क नहीं करूँगी। हाँ पिताजी, मैंने सिकन्दरशाहके विषयमें एक कहानी सुनी है,—क्या वह सच है?

सेल्यू०—क्या?

हेलेन—वे जब भारत–जीतने गये थे, तब उन्हें एक ब्राह्मण मिला था । उसने उनसे पूछा—" अच्छा सिकन्दरशाह, भारत जीतनेके बाद आप क्या जीतेंगे ? " सिकन्दरशाहने जवाब दिया—" चीन । " " उसके बाद ? " " अफ़रीका । " " फिर ? " " यूरोप । " " उसके बाद ? " सिकन्दर जब और कुछ न सोच सके, तब बोले—" उसके बाद एक बड़ा भारी भोज देंगे । " ब्राह्मणने कहा " तो भोज अभी क्यों नहीं दे देते हो ? "

सेल्यू०—मालूम होता है कि वह ब्राह्मण बड़ा पेटू था ।

हेलेन—नहीं पिताजी, वह बड़ा भारी दार्शनिक था । मनुष्यकी उच्चाशाओंका कहीं अन्त नहीं है । दार्शनिक डायोजिनीज़ इसके विपरीत चले थे । उन्होंने जीवनकी आवश्यकतायें जहाँतक संक्षिप्त हो सकती थीं, उतनी संक्षिप्त कर ली थीं । यह तो मालूम ही होगा कि वे एक नाँदमें बैठे रहते थे ।

सेल्यू०—तब कहना चाहिए कि वह बड़ा ही मूर्ख दार्शनिक था ।

हेलेन—मूर्ख ? तो क्या इसी लिए वीरवर सिकन्दरशाह उसका दर्शन करने गये थे ? उन्होंने उस दार्शनिकसे पूछा कि मैं भुवनविजयी सिकन्दरशाह हूँ । तुम जो माँगो वह मैं देसकता हूँ । बोलो, क्या चाहते हो ?

सेल्यू०—अवश्य ही उसने एक बड़ी भारी ज़मींदारी माँगी होगी ।

हेलेन—नहीं । उसने कहा—तुम ईश्वरकी दी हुई धूप छोड़कर अलग खड़े हो जाओ । इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं चाहता ।

सेल्यू०—सिकन्दरने अवश्य ही इसको एक बड़ा भारी पागलपन समझा होगा ।

हेलेन—नहीं पिताजी, सिकन्दरशाहने कहा—" यदि मैं सिकन्दरशाह न होता, तो यही चाहता कि मैं डायोजिनीज़ होता। "

सेल्यू०—" यदि मैं सिकन्दरशाह न होता "—बड़े चतुर थे सिकन्दरशाह। (हँसते हँसते प्रस्थान)

हेलेन—हाय रे मनुष्य ! तुम दूसरोंका सुख नहीं देख सकते। दूर खड़े होकर परस्पर एक दूसरेके ऊपर आँखें लाल करते हो और गरजते हो। तुम्हारी इच्छा तो यही होती है कि दौड़कर एक दूसरेका गला काट डालें; पर तुम यह इच्छा केवल डरसे ही पूरी नहीं कर पाते। प्रत्येककी यही इच्छा है कि ससागरा पृथ्वीको ग्रास कर लें। माता वसुन्धरा, ऐसे राक्षसको तुमने क्यों जन्म दिया ! ईश्वर, अपनी इस जघन्य सृष्टिको वापिस कर लो।—आदिसे अन्ततक भ्रम ही भ्रम।—

पञ्चम दृश्य।

स्थान—चन्द्रकेतुका गृहोद्यान।

समय—सन्ध्या।

[नदीके तीर छाया अकेली टहल रही है और गा रही है।]

वृथा आस, चाह वृथा, वृथा क्यों अब भी उसका खयाल है।
वह मणि है सागरकी, गगनका चंद्र, दुर्लभ लाल है॥
वह मुझको मिलनेका नहीं, फिर भी अभागिन मैं सदा—
क्यों याद उसको किया करूँ ? क्या काँपती हूँ ? क्या हाल है ?
इस दिलमें क्यों निसदिन बजे अनुरागहीकी वो रागिनी;
सुनूँ उठता नीरव गान वह, छाया अकास-पताल है॥
देखूँ, मैं, सुनकर धुन वही ये वसुन्धरा भी सिहर उठें;
तारागणोंकी भीमण्डली ज्यों काँपती सी बिहाल है॥

सुगभीर नीरव नील फिर अधरातको मैं हूँ ताकती;
क्यों ससीम हो उस असीममें मिलनेका मुझको खयाल है ॥
असमर्थ हूँ मैं, गिरा करें धरतीपै आँसू गरम गरम ।
मिलती है शान्ति इसीमें क्यों, कैसा ये भ्रम-जंजाल है ॥
फिर भी मैं क्यों यों याचनाकर, छाँट लेती हूँ दुःख ही ।
नहीं भूल सकती हूँ क्यों उसे, जिससे मिला ये मलाल है ॥
नहीं जी नहीं, तो भी दुःख वह भूले न मरनेके वक्त तक ।
मिली है जो नीरस जिन्दगी तो मिलेगी मौत रसाल है ॥

[चन्द्रगुप्तका प्रवेश ।]

चन्द्रगुप्त—छाया !

छाया—कौन ? महाराज !

चन्द्रगुप्त—तुम्हारे दादा कहाँ हैं ?

छाया—जानती नहीं, देख आऊँ । (जानेको तैयार होती है ।)

चन्द्रगुप्त—ठहरो ।

(छाया फिरके खड़ी हो गई और चन्द्रगुप्तकी ओर स्थिर नेत्रोंसे देखने लगी ।)

चन्द्रगुप्त—युद्धके अनन्तर तुम फिर मिली ही नहीं ?

(छायाने कुछ उत्तर नहीं दिया ।)

चन्द्रगुप्त—छाया, तुमने हमारे प्राणोंकी रक्षा की है ।

(छायाने कुछ उत्तर नहीं दिया ।)

चन्द्रगुप्त—उसके लिए कृतज्ञता प्रकाश करनेका सुअवसर ही नहीं मिला । छाया, मैं तुम्हारा बड़ा ही कृतज्ञ हूँ ।

छाया—(अर्धोच्चारित स्वरसे) बस इतना ही !

चन्द्रगुप्त—प्रत्युपकारस्वरूप मैं तुमको—

छाया—इसकी कुछ आवश्यकता नहीं है महाराज ! हम लोग हीन पार्वत्य जातिके हैं ।—उपकारको बेचते नहीं । हम महत्प्रवृत्तियोंका

वाणिज्य नहीं करते। मैं महाराजकी जीवन-रक्षा कर सकी, यही सौभाग्य मेरे लिए यथेष्ट पुरस्कार है। इससे अधिक मैं और किसी बातकी प्रत्याशा नहीं करती।

चन्द्रगुप्त—इस किशोर हृदयमें इतना महत्त्व ! किंवा—

छाया—महाराज, हम लोग बालपनसे ही शिकार खेलना सीखते हैं, युद्ध करना सीखते हैं; परन्तु धोखा देना नहीं सीखते। सम्‍ दो-अर्थी भाषामें बात करना हम नहीं जानते। हम जो कहते हैं उसमें केवल एक ही अर्थ होता है, उसमें ' किंवा ' नहीं होता।

चन्द्रगुप्त—छाया, तुम एक पहेली हो।

छाया—महाराज, मैं कोई प्रत्युपकार नहीं चाहती। (जाना चाहती है।)

चन्द्रगुप्त—ठहरो छाया, हम एक बात पूछते हैं। उपकार करनेके अनन्तर तुम उपकृत व्यक्तिके प्रति इतनी उदासीन क्यों हो? मैंने देखा है छाया, जब तुम चन्द्रकेतुके साथ बात करती होती हो और मैं आ जाता हूँ, तो तुम तुरन्त चली जाती हो।—इतनी उदासीनता !

छाया—(अस्फुट स्वरसे) उदासीन ! (थोड़ी देरके लिए सिर झुका लेती है और फिर सहसा कहने लगती है) आपने कभी पर्वतके शिखरपर खड़े होकर सूर्योदय देखा है ?—दिगन्त तक फैली हुई पर्वतश्रेणीके ऊपर काँपती हुई सूर्य्य-किरणोंकी लहरोंको खेलते जाते देखा है ?

चन्द्रगुप्त—हाँ छाया, देखा है।

छाया—हम लोगोंका जीवन उसी भाँतिका है—एक उज्ज्वल घनश्याम लता—आवेगसे काँप रही है। पर्वतके ऊपरकी भूमिमें रहनेवाला नीचे खड़े होकर क्या उसे देख सकता है महाराज ?

चन्द्रगुप्त—हाँ, इसी लिए शायद हम तुम्हें अच्छी तरह नहीं समझ सकते। तब भी जान पड़ता है कि तुम लोगोंके घन-श्याम आवरणके नीचे हृदय है।

छाया—यह महाराजका सौजन्य है कि 'काली देह' न कहकर 'घनश्याम आवरण' कहते हैं; किन्तु महाराजने देखा होगा कि मेघ जितना ही काला होता है, उतना ही अधिक वह सलिल-सम्भार-समृद्ध होता है। उसके वक्षमें उतनी ही तीव्र बिजली खेलती है। हमारे हृदय है, बस क्या इतना ही आपको जान पड़ता है? हाय! यदि यह जान पाते कि वह कितना बड़ा हृदय है और उसमें कैसी लहरें लहराती हैं!

चन्द्रगुप्त—क्या यह भी सम्भव है! छाया, क्या तुम मुझे प्यार करती हो? यह भी सम्भव है?

छाया—महाराज, यह क्यों सम्भव नहीं है? ईश्वरने आप लोगोंकी देहके ऊपर कुछ अधिक रंग मल दिया है, इसीसे आप अहंकारवश पृथ्वी-पर पैर नहीं रखते हैं! क्या आप यह पूछते हैं कि मैं आपपर प्रेम करती हूँ? ना महाराज, मैं आपसे घृणा करती हूँ। आप क्या यह सोचते हैं कि मैं भिक्षुककी भाँति आपसे प्रेम-भिक्षा माँगती हूँ? दयापूर्वक आप मुट्ठी भर प्रेमकी भिक्षा देंगे और मैं उसे हाथ फैलाकर ले लूँगी?—इतनी बड़ी स्पर्धा!—महाराज, यद्यपि मैं हीन असभ्य पहाड़ी काली स्त्री हूँ और आप मगधके देवस्तुत महाराज हैं, तथापि मैं आपसे घृणा करती हूँ। (जल्दीसे प्रस्थान।)

चन्द्रगुप्त—बड़ी ही अद्भुत बात है! प्राणरक्षा करनेके बाद अब यह घृणा! नारी-चरित्र एक अपूर्व पहेली है। बहुत दिन हुए सिन्धु नदीके तीर—सिकन्दरशाहके समक्षमें सेल्यूकसकी कन्याको देखा था। आज उसकी वह कृतज्ञतापूर्ण सजल दृष्टि याद आरही है! क्या वह

प्रेम था ? या केवल कृतज्ञता थी ? आह ! वह यूनानी बालिका कैसी अपूर्व सुन्दरी थी !—महा समुद्रकी नील-जलराशिके ऊपर अवतीर्ण हुई उषाकी भाँति—रक्तवर्ण-जवा-फूलोंकी राशिके मध्यमें खिले हुए गुलाबकी भाँति ! पर जाने दो, उस बातको आज मैं क्यों स्मरण कर रहा हूँ ! वह केवल एक मधुर स्वप्न था !

[चन्द्रकेतुका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—यह देखो, चन्द्रकेतु आ रहे हैं।

चन्द्रकेतु—भाई, ब्राह्मणकी आज्ञासे आज ही रातको भूतपूर्व महाराज नन्दका बलिदान होगा।

चन्द्रगुप्त—(विस्मयसहित) यह क्या !—बलिदान होगा ! ब्राह्मणकी आज्ञासे !—मैं कौन हूँ ? मगधका महाराज नहीं हूँ ? इतना श्रम और इतना आयोजन क्या केवल ब्राह्मणके प्रभुत्वकी होमाग्निमें घृत डालनेके लिए ही किया गया ?—चन्द्रकेतु !

चन्द्रकेतु—भाई !

चन्द्रगुप्त—यह प्राण-दण्ड नहीं होगा। मैं माफ़ी लिखे देता हूँ, ले जाओ। कह देना कि यह महाराज चन्द्रगुप्तकी आज्ञा है—प्रार्थना नहीं ! जाओ, तैयार होओ। [चंद्रकेतुका प्रस्थान।]

चन्द्रगुप्त—ब्राह्मणकी इतनी स्पर्धा कि न मुझे कोई संवाद दिया और न मेरी अनुमति ली।—आश्चर्य है ! मानों मैं साम्राज्यका कोई हूँ ही नहीं—केवल चाणक्यके हाथकी कठपुतली हूँ !

[छायाका पुनः प्रवेश।]

छाया—महाराज, क्षमा कीजिए।

चन्द्रगुप्त—क्या क्षमा करूँ छाया ?

छाया—मैंने ढिठाई की थी । अपराध हुआ, क्षमा कीजिए । क्षमा न कर सकते हों, तो दण्ड दीजिए ।

चन्द्रगुप्त—क्यों ? तुमने तो कोई अपराध नहीं किया । तुम यदि मुझसे घृणा करती हो, तो उसके कहनेमें क्या दोष है ?

छाया—घृणा करती हूँ ! जो मेरी जाग्रत अवस्थाके ध्यान और निद्रावस्थाके स्वप्न हैं, जो मेरे इस कालके धन और परकालके स्वर्ग हैं, जिनका दर्शन मेरे लिए तीर्थ और अदर्शन अभिशाप है,—उनसे घृणा करूँगी !—मैंने झूठ कहा था । तथापि इच्छा होती है कि—यदि मैं तुमसे घृणा कर सकती !

चन्द्रगुप्त—क्यों छाया ! मैंने तुम्हारा क्या किया है ?

छाया—क्या किया है !-यह पूछिए कि क्या नहीं किया है !-आपने आहारकी क्षुधा, सोनेकी निद्रा और सर्व समयकी शान्ति हर ली है । आपने मेरी दृष्टिसे सारा संसार लुप्त कर दिया है । आपकी चिन्तामें मेरा अस्तित्व लीन हुआ जाता है ।—मैं स्वर्गमें हूँ या नरकमें हूँ, यह नहीं समझ पड़ता और उसपर आप पूछते हैं कि मैंने तुम्हारा क्या किया है ! निष्ठुर ! (रो देती है ।)

चन्द्रगुप्त—छाया ! (स्नेहसे उसका हाथ पकड़ लेते हैं ।)

छाया—नहीं, मुझको स्पर्श मत करो—स्पर्श मत करो । इस स्पर्शसे मेरे अंगमें बिजलीका प्रवाह बह उठता है, मेरा मस्तिष्क पत्थर-पर गिरे हुए काँसेके वर्तनकी भाँति झन-झना उठता है !—नहीं, मैं इस उन्मादको दमन करूँगी । (जल्दीसे प्रस्थान ।)

चन्द्रगुप्त—कैसा आश्चर्य्य है !—मैं इतने दिनोंसे जिसे भगिनीकी भाँति चाहता रहा हूँ—आश्चर्य !

षष्ठ दृश्य।

[चाणक्य और उसके शरीररक्षक। सामने कैदीकी हालतमें नन्द। पास ही पैनाई हुई तलवार और कुछ दूरपर यूप-काष्ठ रक्खा है।]

चाणक्य—भूतपूर्व महाराज नन्द, देखा तुमने कि अभी तक ब्राह्मणका प्रताप नहीं गया है? ईश्वर मूर्ख नहीं है, इसी लिए उसने बाहुओंके ऊपर मस्तिष्क बनाया है। आर्य्य ऋषिगण मूर्ख नहीं थे, इसी लिए क्षत्रियके ऊपर ब्राह्मणकी व्यवस्था की गई है। किसीकी सामर्थ्य नहीं कि ब्राह्मणको नबा दे! भारत जब तक भारत है, तब तक ब्राह्मण इस समाजके ऊपर शासन करेगा। तदनन्तर सब एक साथ नष्ट भ्रष्ट हो जायँगे!

नन्द—क्या मुझे अपना दम्भ सुनानेके लिए यहाँ बुलाया गया है?

चाणक्य—नहीं, यह बात नहीं है!—यह खड्ग देखते हो? यह यूप-काष्ठ देखते हो?—क्या अब भी तुमको यह समझना बाकी है कि यहाँ किस लिए लाये गये हो? उस दिनकी मेरी प्रतिज्ञा तुम्हें याद है कि तुम्हारे रक्तसे रञ्जित हाथोंसे यह चोटी बाँधूँगा? अब भी यह बाँधी नहीं गई है—देखो!—अब भी क्या तुम नहीं समझे कि यहाँ क्यों बुलाये गये हो?

नन्द—मेरा वध करोगे?

चाणक्य—अवश्य।

नन्द—निरस्त्र बन्दीकी हत्या!—क्या यही तुम्हारा सनातन धर्म है?

चाणक्य—क्या आज ब्राह्मणको क्षत्रियके पास आकर सनातन धर्मका मर्म सीखना होगा ?—सुनो, यह हत्या नहीं, यह तुम्हारा मृत्यु-दण्ड है और वह दण्ड देता हूँ—मैं ब्राह्मण ।

नन्द—किस अपराधमें ?

चाणक्य—ब्रह्महत्याके अपराधमें । ब्राह्मणकी सम्पत्ति लूटनेके अपराधमें । ब्राह्मणके अपमान करनेके अपराधमें । तुम इसको कहते हो हत्या, पर मैं इसको न्याय-विचार कहता हूँ और इस विचारके करनेका मुझे अधिकार है । नन्द ! मैं ब्राह्मण हूँ,—तैयार हो जाओ । सिपाहियो, इसे यूपस्तंभसे बाँध दो ।

नन्द—चाणक्य, मैंने कात्यायनके प्रति और तुम्हारे प्रति अन्याय अविचार किया था, मुझे क्षमा करो ।

चाणक्य—(ठठाकर हँसकर) ठीक ! अक्षर अक्षर ठीक हो रहा है ! नन्द, तुम्हें याद ह, उस दिन मैंने कहा था कि एक दिन ऐसा होगा जिस दिन तुम इसी भिक्षुकके पैरोंपर गिरकर क्षमाकी भिक्षा चाहोगे और म वह भिक्षा नहीं दूँगा ।

नन्द—ब्राह्मण, मैं प्राणभिक्षा नहीं चाहता । मैं क्षत्रिय हूँ । मैं ब्राह्मणका प्रभुत्व नहीं मानता, शूद्रको घृणा करता हूँ और अपने पिताकी गणिकाके पुत्रसे घृणा करता हूँ । मृत्युका भय मुझे नहीं है । तुम्हारी लाल लाल आँखोंको मैं तुच्छ समझता हूँ; परन्तु अपना अन्याय समझता हूँ । मैं इतना पापी नहीं हूँ कि प्रजाकी सम्पत्ति लूटूँ और नरहत्या करूँ । संग-दोषने मुझे पापी बना दिया था । क्षमा करो ।—कात्यायन—

कात्यायन—(काँपते हुए स्वरमें) नन्द, महाराज, मैंने क्षमा कर दिया।

चाणक्य—खबरदार कात्यायन !—क्षमा नहीं है। इस पृथ्वीपर कोई किसीको क्षमा नहीं करता और न क्षमा कर सकता है। हृदयके भीतर जो यंत्रणाकी भट्टी धधक रही है, वह क्या तुम्हारी आँखोंके दो बूँद आँसुओंसे ठण्डी हो जायगी ? यह नहीं हो सकता। सारी क्षमा मौखिक होती है। जिस प्रकार अनुताप मौखिक होता है, क्षमा भी मौखिक होती है। मैंने नहीं देखा कि किसीने दण्डको सामने देखे विना कभी अनुताप किया हो। मैंने कभी नहीं देखा कि कभी फटा हुआ मन, क्षमासे ठीक पूर्वकी भाँति जुड़ गया हो। यह हो नहीं सकता।

कात्यायन—किन्तु—नन्द बालक है।

चाणक्य—जो बालक है, उसको बालकहीकी तरह रहना उचित है। बालक भी यदि बिना जाने आगमें हाथ दे दे, तो हाथ जल जायगा। अग्नि अपना काम करनेमें आगा-पीछा नहीं करती।

कात्यायन—तथापि—पाणिनि—

चाणक्य—(जोरसे पृथ्वीपर पैर पटककर) फिर पाणिनि ! इस समय यदि तुम पाणिनिका नाम लोगे, तो मैं तुम्हारी हत्या कर डालूँगा !

कात्यायन—नन्द बालक—

चाणक्य—सो तो देखता हूँ ! खड्ग उठाओ कात्यायन, तुमको ही अपने हाथसे इसका वध करना होगा।

कात्यायन—मुझको ?

चाणक्य—हाँ तुमको ! पुत्रहत्याका बदला लो। कात्यायन, याद करो, अपने उन सात पुत्रोंकी शीर्ण पाण्डुमूर्ति, उनका वह

अन्नके लिए क्षीण स्वरसे हाहाकार, उनकी निष्प्रभ दृष्टि और फिर उनका संज्ञाहीन, ठण्डा और कठिन हो जाना। इसके बाद उनके निष्पन्द, निर्निमेष नेत्रद्वयके ऊपर मृत्युका कराल मुद्राङ्कण—याद करो कि उस मृत्युको तुम अपने सामने देख रहे हो! तुम उनके पिता हो, तो भी देख रहे हो!—कात्यायन, अपने हाथसे उनका बदला लो।

(कात्यायनने तलवार ले ली।)

चाणक्य—अब विलम्बका क्या प्रयोजन है!—सिपाहियो, इसे यूपस्तम्भसे बाँध दो। (सिपाहियोंने नन्दको बाँध दिया।)

चाणक्य—तो भूतपूर्व महाराज!—कात्यायन!—

(कात्यायन खड्ग लिये यूप-काष्ठके निकट आ जाता है।)

चाणक्य—भूतपूर्व महाराज नन्द, यह ब्राह्मणका काम नहीं है, किन्तु क्या किया जाय, आज इसका प्रयोजन आ पड़ा है। अब ब्राह्मणकी वह तपस्या नहीं रही। इच्छा होती है कि द्वितीय परशुरामकी भाँति भारतवर्षको निःक्षत्रिय कर दूँ, कपिलकी भाँति क्रोधभरी एक दृष्टिसे नन्द-वंशको भस्म कर दू; परन्तु कलियुगमें यह नहीं होता। इसी लिए खड्गकी सहायता लेनी पड़ी है। तब भी इस पापी कलियुगमें भी भारतवर्ष एक बार ब्राह्मणका प्रताप देखे!—(कात्यायनसे) वध करो।—हाँ!—और मरनेके पहले सुने जाओ नन्द!—भूतपूर्व महाराज!—तुम्हारे वंशमें अब पानी देनेवाला, दिया जलानेवाला कोई नहीं रहा!—नन्दवंश निर्मूल कर दिया गया।

(नन्द आर्त्तनाद करता ह।)

(कात्यायनने तलवार उठाई।)

चाणक्य—अब वध करो।

[जल्दीसे चन्द्रकेतुका प्रवेश।]

चन्द्रकेतु—सावधान! तलवारको रोक दो ब्राह्मण!

चाणक्य—क्यों चन्द्रकेतु ?

चन्द्रकेतु—राजाज्ञा। (कात्यायनने तलवार नीचे कर ली।)

चाणक्य—इसका मतलब, चन्द्रकेतु ?

चन्द्रकेतु—यह लीजिए महाराज चन्द्रगुप्तका क्षमा-पत्र। महाराजने नन्दको छोड़ दिया है।

चाणक्य—महाराज चन्द्रगुप्तकी आज्ञा !—समझा। किन्तु यह आज्ञा मेरे लिए नहीं है।—वध करो—

चन्द्रकेतु—किन्तु गुरुदेव, यह राजाज्ञा है।

चाणक्य—यह ब्राह्मणकी आज्ञा है। वध करो कात्यायन !

चन्द्रकेतु—तो महाराज स्वयं आवें। उनके आनेके पहले हम वध नहीं करने देंगे। राजाज्ञाका हम पालन करेंगे।—सिपाहियो, हटकर खड़े होओ।

चाणक्य—कदापि नहीं—वहीं खड़े रहो।

चन्द्रकेतु—वीरबल !

[सेनाध्यक्ष वीरबल और पाँच सैनिकोंका प्रवेश।]

चन्द्रकेतु—सैनिको, महाराजके आगमनपर्य्यन्त बन्दीकी रक्षा करो। वीरबल,—महाराजको संवाद दो।

(वीरबलका प्रस्थान।)

चाणक्य—कात्यायन ! खड्ग लिये हुए स्वाँगसा बनाये खड़े क्या देख रहे हो ? मानो मिट्टीके पुतले हो। लाओ, खड्ग मुझे दो।

(आगे बढ़ते हैं।)

चन्द्रकेतु—(सामने जाकर, घुटने टेककर, तलवारसे रास्ता रोक कर) मैं ब्राह्मणके सम्मुख नतजानु होता हूँ, किन्तु राजाज्ञा पालन करूँगा।

चाणक्य—वध करो, कात्यायन !

(कात्यायनने ज्यों ही तलवार उठाई, त्यों ही चन्द्रकेतुने उसको राजाज्ञापत्र दिखाकर कहा—)

चन्द्रकेतु—राजाज्ञा । (कात्यायनने तलवार नीचे कर ली ।)

चाणक्य—कोई चिन्ताकी बात नहीं है कात्यायन ! जो ब्राह्मण चन्द्रगुप्तको सिंहासनपर बिठा सकता है, वह उसको सिंहासनसे नीचे भी उतार सकता है ।—वध करो ।

(कात्यायन फिर तलवार उठाना चाहता है ।)

चन्द्रकेतु—सावधान ! यदि इसके लिए ब्रह्महत्या भी करनी होगी, तो मैं आगा पीछा न करूंगा ।

[मंदिरके भीतरसे मुराका प्रवेश ।]

मुरा—और यदि नारी-हत्या हो तो ? (कात्यायन और चन्द्रकेतुके मध्यमें आकर खड़ी हो जाती है ।)

चन्द्रकेतु—(स्तम्भित होकर) माता, आप हैं ?

मुरा—हाँ मैं हूँ । मेरी आज्ञा है—वध करो ।

चन्द्रकेतु—माता, आप नन्दको क्षमा कर दीजिए ।

मुरा—(व्यंग्यसे हँसकर) क्षमा !—क्षमा नहीं है । मैं क्षमा नहीं कर सकती—मैं क्षमा करना नहीं जानती । क्योंकि मैं शूद्राणी हूँ । क्षमा ब्राह्मणका धर्म है—शूद्रका नहीं ।

चन्द्रकेतु—क्षमा मनुष्यका धर्म है—केवल ब्राह्मणहीका नहीं है । क्षमा करनेसे जो अपार सुख होता है, उसको भोग करनेका क्या केवल ब्राह्मणहीको अधिकार है ? वह क्षमा स्वर्गसे भागीरथीकी पवित्र जलधाराकी भाँति इस संसारमें उतर आई है । सबको ही इस पुण्य-

तरंगमें स्नान करके पवित्र होनेका अधिकार है। क्या ईश्वरकी क्षमा आकाशसे शतधारा होकर इस मर्त्यलोकमें नहीं उतर आई है ? रोगमें यही क्षमा स्वास्थ्यरूपिणी होकर आती है और हमारी रक्षा करती है। शोकमें यही क्षमा विस्मृति लेकर आती है। दारिद्र्यको यह क्षमा ही सहिष्णुता देकर घेरे रहती है। माता यदि शैशवमें सन्तानके सैकड़ों अपराधोंको क्षमा न करे, तो क्या सन्तान बच सकती है मा ?—मा, क्षमा करो, मैं घुटने टेककर क्षमा माँगता हूँ। (घुटने टेक दिये।)

मुरा—चन्द्रकेतु, क्या तुम्हीं अकेले क्षमा माँग रहे हो ? मेरे प्राण इस पञ्जरके द्वारको भेदकर, बाहर निकलकर और पैर पकड़कर क्या यही भिक्षा नहीं माँग रहे हैं ?—नन्दको इस क़ैदीकी अवस्थामें देखती हूँ, उसके इस म्लान अधोमुखको देख रही हूँ और आँसू उमड़-कर मेरे दृष्टि-पथको नहीं रुद्ध कर रहे हैं ! नन्द, शूद्राणीका दूध क्या क्षत्रियाणीके दूधसे कम मीठा होता है ? शूद्राणीका स्नेह क्या क्षत्रि-याणीके स्नेहसे कम सफ़ेद होता है ? नहीं, मैं क्षमा नहीं करूँगी। क्योंकि मैं शूद्राणी हूँ—गणिका हूँ !—वध करो !

चन्द्रकेतु—किन्तु मा—यह राजाज्ञा है।

मुरा—और यह राजमाताकी आज्ञा है। मैं दासी—गणिका होने पर भी महाराज चन्द्रगुप्तकी जननी हूँ।—मेरी आज्ञा है !—वध करो !

चन्द्रकेतु—बस, यहीं मैं हार मानता हूँ ! सब देशों और सब कालोंकी नारियोंके निकट मैं पराजित हूँ। (मुराके पैरोंमें तलवार रखकर) नारीके केशाग्रको भी स्पर्श करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है।

चाणक्य—वध करो कात्यायन !

(कात्यायनकी तलवारका वार हो गया। नन्दकी देहसे उसका मस्तक अलग हो गया।)

चाणक्य—हाः हाः ! प्रतिहिंसा पूर्ण हो गई । (नन्दके रक्तसे हाथ रँगकर चोटी बाँधना और प्रस्थान ।)

कात्यायन—(नन्दके कटे हुए सिरको उठाकर) मेरे सात बेटोंकी हत्याका यही बदला है !

मुरा—अरे क्या किया ! वध कर दिया !—यह क्या किया मैंने —मैं तो इसकी रक्षा करने आई थी—(हाथोंसे मुँह छिपा लेती है ।)

[चन्द्रगुप्तका प्रवेश ।]

चन्द्रगुप्त—(नन्दके सिरको देखकर और भयसे पीछे हटकर ।) यह क्या !

मुरा—उन्होंने नन्दको वध कर डाला !—इसी मुखमें मैंने अपना स्तन्य दिया है । इसी देहको मैं अपनी छातीसे चिपटाकर सोती थी । —ओह ! क्या किया ! क्या किया मैंने ! बेटा चन्द्रगुप्त ! (मुँह फिराकर)

चन्द्रगुप्त—किसने वध किया है ?

कात्यायन—मैंने ।

चन्द्रगुप्त—किसकी आज्ञासे ?

मुरा—मेरी आज्ञासे । अरे ब्राह्मण ! मैं नारी थी—मूर्ख दुर्बल ज्ञानहीन नारी थी ।—किन्तु ब्राह्मण, तूने यह क्या किया ! कितनी बार तूने इसी मुखको चुम्बन किया था ! अब भी तू कितने पैशाचिक उल्लाससे इस कटे सिरको हाथमें लिये हुए खड़ा है !

(कात्यायनके हाथसे सिर गिर पड़ता है ।)

चन्द्रगुप्त—ब्राह्मण, तुमने राजाज्ञाकी अवहेलना की है ?

कात्यायन—की है ।

चन्द्रगुप्त—ब्राह्मण अवध्य है । जाओ, मैंने तुमको राज्यसे निर्वासित किया ।

कात्यायन—महाराज !

चन्द्रगुप्त—मैं सुनना नहीं चाहता । म इसी समयसे दिखला देना चाहता हूँ कि मेरी आज्ञा भिक्षुककी प्रार्थना नहीं है । जाओ, यही तुम्हारी सजा है ।

(कात्यायन चुपकेसे चला जाता है ।)

चन्द्रगुप्त—चन्द्रकेतु !

चन्द्रकेतु—यदि जगतके एक करोड़ वीर भी राजाज्ञाके विपक्षमें धारदार खुली हुई तलवार लिये हुए खड़े होते, तो भी चन्द्रकेतु राजाज्ञाके पालन करनेमें प्राण दे देता । किन्तु नारीके सन्मुख मैं शिशुसे भी अधिक दुर्बल हूँ ।

चन्द्रगुप्त—और—मा !

मुरा—मेरे अपराधका मुझे दण्ड दो बेटा !

चन्द्रगुप्त—(घुटने टेककर और हाथ जोड़कर) तुम्हारा अपराध मा ! माका अपराध सन्तानके आगे !—तुम जो चाहे करो, तुम मेरे लिए सदा ही मा हो,—" जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी " ।

(एक हाथ निहत नन्दकी ओर प्रसारित कर दिया और दूसरे हाथसे दोनों आँखें बन्द कर लीं ।)

चतुर्थ अङ्क ।

प्रथम दृश्य ।

स्थान—चाणक्यकी कुटीरका कमरा ।

समय—गो-धूली बेला ।

[अकेला चाणक्य ।]

चाणक्य—प्रतिहिंसा पूर्ण हो गई । किन्तु वह एक क्षणिक उन्मादना थी । अब फिर वही अवसाद आ गया है ! बाहरी वाद्य थम गया है, परन्तु हृदयका वही हाहाकार सुनाई पड़ता है । अपने अगाध स्नेहकी राशिको जिसमें रक्खूँ ऐसा कोई पात्र नहीं है । हृदय कम्पित आग्रहसे मानो किसीको छातीसे चिपटाना चाहता है; किन्तु वह व्यग्र आलिङ्गन चिपटा रखता है—अपनी ही उष्ण निःश्वासको । —अरे राक्षसी ! यह तूने क्या किया ?—यह केवल अरण्य-रोदन है—

(सिर पीट लेता है और फिर धीरे धीरे टहलने लगता है ।)

[प्रथम गुप्तचरका प्रवेश ।]

चाणक्य—क्या समाचार है ?

चर—कात्यायन शत्रुके शिबिरमें है, यह खबर ठीक है ।

चाणक्य—और कुछ ?

चर—यूनानियोंने सिन्धुनद पार कर लिया है ।

चाणक्य—सेना कितनी है ?

चर—चार लाख ।

चाणक्य—अच्छा जाओ।

(गुप्तचर चला जाता है।)

चाणक्य—कात्यायन !—तुम्हारे सब दिन एकहीसे गये। तुमने राज्यसे निर्वासित होनेपर स्थिर किया कि अबसे हम अध्यापनका कार्य किया करेंगे। परन्तु सेल्यूकस तुम्हें जिधर मोड़ना चाहता है, उधर ही तुम मुड़ जाते हो। और उसपर तुर्रा यह कि तुम्हें हमारे मंत्रित्वसे ईर्षा हुई है !—मूर्ख !

[द्वितीय गुप्तचरका प्रवेश।]

चाणक्य—क्या समाचार है ?

चर—विद्रोही लोग दलवद्ध हो गये हैं। उनका संकेत है।—तीन बार तुरहीका बजाना।

चाणक्य—और कुछ ?

चर—महाराजके शयनागारमें २५ घातक सुरंग काटे बैठे हैं और महाराजका मार्ग देख रहे हैं।

चाणक्य—यह तो मैंने पहले ही सुन लिया है।—उनका दलपति कौन है ?

चर—वाचाल।

चाणक्य—अच्छा जाओ।

(गुप्तचरका प्रस्थान।)

चाणक्य—मूर्ख वाचाल !—वीरबल !

[सेनाध्यक्ष वीरबलका प्रवेश।]

वीरबल—क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—चन्द्रगुप्तके सोनेके कमरेमें सुरंग काटकर २५ घातक बैठे हुए हैं। तुम सेना लेकर जाओ और उनका वध करो।

वीरबल—जो आज्ञा।

चाणक्य—अभी जाओ ।

वीरबल—जो आज्ञा । (प्रस्थान ।)

चाणक्य—वाह ! समाचारोंके चुरानेका व्यवसाय भी अद्भुत है । यह स्वयं चाणक्यकी सृष्टि है । यह ठीक है कि श्रीरामचन्द्रजी गुप्तचर रखते थे; किन्तु वे अपनी बुराई सुननेके लिए रखते थे और मैं गुप्तचर रखता हूँ बुराईका गला दबा देनेके लिए ।

[चन्द्रकेतुका प्रवेश ।]

चन्द्रकेतु—मुझे बुलवा भेजा था आपने गुरुदेव ?

चाणक्य—हाँ चन्द्रकेतु !—चन्द्रगुप्त आज रातको दाक्षिणात्य जय करके लौटे आरहे हैं, यह तो जानते ही हो ?

चन्द्रकेतु—हाँ जानता हूँ । उन्होंने मुझे नगरमें उत्सवका आयोजन करनेके लिए आज्ञा दी है ।

चाणक्य—तो क्या तुमने आयोजन किया है ?

चन्द्रकेतु—हाँ, किया है । नगरमें रोशनी होगी, घर-घर शंखध्वनि होगी, गली गली जयके बाजे बजेंगे, और—

चाणक्य—कुछ नहीं होगा ।—व्यर्थका आयोजन है ।—अरे तुम मेरी ओर एकटक क्या देख रहे हो !—जाओ, उत्सव बन्द करो ।

चन्द्रकेतु—यह क्या गुरुदेव ?

चाणक्य—जाओ । (चन्द्रकेतुने अनिश्चित भावसे प्रस्थान किया ।)

चाणक्य—एक महान् पवित्र उज्ज्वल राज्य छोड़कर मैं कहाँ जा रहा हूँ !—अब भी उसका आलोकमण्डित शिखर दिखाई पड़ रहा है । तब सब कुछ अन्धकारमें लुप्त हो जानेके पहले ही क्यों न लौट चलूँ ! —पिशाची ! छोड़ दे, लौट जाऊँ । नहीं नहीं—कहाँ लौट जाऊँगा ! कौन हाथ पकड़कर ले जायगा ! मिथ्या, प्रवंचना, चौर्य, हत्या इन

सबका भी तो एक राज्य है।—इसमें बुरा क्या है ! मजेमें हूँ। खूब है !—(दीर्घ निःश्वास)—रात कितनी गई ?—देखूँ। (खिड़की खोल देता है और पूर्णचन्द्रकी चाँदनी कोठरीमें फैल जाती है। तब भयसहित पीछे हटकर कहता है—) यह क्या ! यह अब तक कहाँ था ! इतना ढेरका ढेर सौन्दर्य, ऊपर, नीचे, निकट, दूर,—दिग्दिगन्तमें फैला हुआ है। यह तो बहुत दिनोंसे नहीं देखा था !—कैसी सुन्दर चाँदनी है ! आकाशमें छोटे छोटे सफेद बादल बहे जारहे हैं और उनके नीचे ज्योत्स्नास्नाता भागीरथी कल-कल स्वरसे गान गाती चली जा रही है।—कैसी सुन्दरता है ! हे पतितपावनी माता सुरधुनि ! भगीरथ किस पुण्यबलसे तुमको—स्वर्गकी मन्दाकिनीको—मर्त्यलोकमें खींच लाये थे ! इस मरु-हृदयमें उसी भक्तिका उच्छ्वास ह मा, एक बार उत्पन्न कर दे ! मैं एक बार मा मा कहकर तरंगोंके ताल तालपर नृत्य करूँ।—यह क्या ! —चाणक्य ! तुम अधीर होते हो !—नहीं, अब और नहीं देखूँगा। (खिड़की बन्द कर देता है।)

(इसी समय नेपथ्यमें किसीने बालिका-कण्ठध्वनिसे कहा—) "जय हो बाबा, कुछ भिक्षा दो।" (चाणक्य सहसा कूदकर खड़ा हो गया और बोला-)

चाणक्य—यह कौन है !—किसका स्वर है !—भीतर आओ।

[भिक्षुक और भिक्षुबालिकाका प्रवेश।]

भिक्षुक—कुछ भीख मिले बाबा !

चाणक्य—(बालिकाकी ओर बड़ी चाहसे देखकर, भिक्षुकसे) अरे भिखारी, इतनी रात गये भीख माँगने निकला है ?

भिक्षुक—इस नगरमें अभी हाल ही आये हैं बाबा ! सारे दिन कुछ खाया नहीं है बाबा !—

बालिका—सारे दिन कुछ खाया नहीं है बाबा !

चाणक्य—ऐं यह क्या !—एकाएक मुझे रोना क्यों आ रहा है ! एक भिक्षुक-बालिका—अरे यह मेरी कैसी दुर्बलता है ! (बालिकासे) बेटी, जरा सामने तो आ ! (बालिका तत्क्षण चाणक्यके सम्मुख आकर खड़ी हो गई ।)

चाणक्य—(बालिकाके मस्तकपर हाथ फेरते फेरते) भिखारी, यह क्या तुम्हारी कन्या है ?

भिक्षुक—हाँ बाबा ।

चाणक्य—(लंबी साँस लेकर) बेटी, तुम्हारा नाम क्या है ?

बालिका—माधू ।

चाणक्य—तुम्हारा घर कहाँ है ?

बालिका—बहुत दूर । नहीं बाबा—हमारा घर नहीं है । कभी किसी अतिथिशालामें जा टिकते हैं और कभी किसी वृक्षकी छायामें ।

चाणक्य—क्या तुम गाना जानती हो ?

भिक्षुक—जानती क्यों नहीं है । गा तो माधू ।

चाणक्य—अभी कुछ ठहरो, कुछ देर विश्राम कर लो ।—

भिक्षुक—गानेसे कुछ कष्ट नहीं होगा बाबा ! हमारा तो यह व्यवसाय है । गा तो बेटी ।

[दोनों गाते हैं ।]

गजल ।

घने तमसे आकाश-धरती ढकी है ।
गरजता है सागर वो नौका चली है ॥
हुई रात गहरी, बटोही है गाता ।
हवा भेदकर सुन पड़े स्वर वही है ॥
उठो मा, उठो मा, इधर देखो मैया ।
मैं आई हूँ, अब कुछ भी चिन्ता नहीं है ॥
बिना माकी यह दीन कन्या है, देखो—
जला दीप, उठ मा, अँधेरी बड़ी है ॥

वनोंको, पहाड़ोंको भी नाँघ आई।
तुम्हारे निकट यह खड़ी किंकरी है॥
हुई रात, आँधी चले, बिजली कड़के।
अरी मेरी मैया, कहाँ तू खड़ी है॥
कुटीका खुला द्वार है, हाय यह क्या!
बुझा दीप, घरमें अँधेरी बड़ी है॥
कहाँ तू है माता! कहाँ तू है जननी!
पड़ी सेज सूनी है! सूनी कुटी है॥
विधाताके चरणोंमें यह आर्त्तवाणी।
करे रोके फर्याद, यों बेकली है॥
पदाघातसे, वज्रके पातसे यों।
गिरी भूमिपर वह, नहीं होश ही है॥

चाणक्य—(अपने मनमें) उस रात्रिको भी ऐसी ही चाँदनी थी। एकाएक चन्द्रमा मेघसे ढक गया। ठंडी हवासे दीपक बुझ गया। हाय मेरी प्यारी बेटी! उसकी चिन्ता भी स्वर्ग है। यह क्या! चाणक्य, तुम्हारी आँखोंमें आँसू! भिखारी!—ये मुट्ठीभर मोहरें ले जाओ (भिक्षा देता है) बेटी—नहीं, जाओ—कहता हूँ, जल्दी जाओ।

(भिक्षुक और बालिका दोनों आश्चर्यसे निर्वाक् होकर चले जाते हैं।)

द्वितीय दृश्य।

स्थान—पाटलीपुत्रका राजमहल।

समय—रात्रि।

[मुरा और चन्द्रकेतु।]

मुरा—चन्द्रकेतु, आज चन्द्रगुप्त दाक्षिणात्य जय करके मगधको लौटा आ रहा है। नगरमें उत्सव क्यों नहीं मनाया जा रहा है?

चन्द्रकेतु—मंत्री चाणक्यने निषेध कर दिया है।

मुरा—यह कैसे ? गुरुदेवने अपने प्रिय शिष्यकी विजयपर उत्सव निषेध कर दिया है ? यह उनका कैसा विचार है ?

चन्द्रकेतु—मा, मंत्रीवरने जो निषेध किया है, उसका अवश्य ही कुछ न कुछ कारण होगा।

मुरा—कारण कुछ नहीं। जान पड़ता है कि चन्द्रगुप्तके विजय-गौरवपर ब्राह्मणके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई है।

चन्द्रकेतु—उस विजय-गौरवकी सूचना किसने दी थी मा ? ब्राह्मणके प्रति अविचार नहीं करना चाहिए।

मुरा—यह देखो बाजेका शब्द सुनाई दे रहा है। बेटा लौटा आ रहा है। मैं जाती हूँ, महलके शिखरपर खड़ी होकर प्रवेश-समारोह देखूँगी। (जल्दीसे चली जाती है।)

चन्द्रकेतु—आज बहुत दिनोंके बाद भाईका जयकी दीप्तिसे दमकता हुआ मुख देखनेको मिलेगा। आज मुझे कितना आनन्द है ! चन्द्रगुप्त ! तुम क्या पूर्वजन्ममें मेरे भाई ही थे ?

(नेपथ्यमें कोलाहल और बाजेपर गानेकी ध्वनि।)

[धीरे धीरे "जय महाराज चन्द्रगुप्तकी जय" की ध्वनि अधिकाधिक होने लगी और क्रमसे निकटवर्ती होने लगी। तदनन्तर पताकाधारी लोगों और सैनिकगणोंके सहित चन्द्रगुप्तने प्रवेश किया।]

चन्द्रकेतु—आओ बन्धु ! (आलिंगन करनेको उद्यत होता है।)

चन्द्रगुप्त—(रूखे भावसे) चन्द्रकेतु, तुम्हें हमारी आज्ञा मिली थी ?

चन्द्रकेतु—कौनसी आज्ञा प्रियवर !

चन्द्रगुप्त—मेरे आगमनके उपलक्षमें नगरमें रोशनी की जावे, यह आज्ञा पाई थी ?

चन्द्रकेतु—हाँ पाई थी।

चन्द्रगुप्त—फिर उस आज्ञाका पालन नहीं किया गया ?

चन्द्रकेतु—मंत्रीने निषेध कर दिया था।

चन्द्रगुप्त—यह तो मैंने पहले ही अनुमान कर लिया था —चन्द्रकेतु ! मगधका महाराज मैं हूँ या चाणक्य ?

चन्द्रकेतु—सुनो भाई !—

चन्द्रगुप्त—उत्तर दो ! मगधका महाराज मैं हूँ या मेरा मन्त्री ?

चन्द्रकेतु—मगधके महाराज चन्द्रगुप्त हैं।

चन्द्रगुप्त—तब ?

चन्द्रकेतु—प्रियवर—

चन्द्रगुप्त—मैं नहीं सुनना चाहता, मंत्रीको बुलाओ।

चन्द्रकेतु—सुनो भाई ! इसका एक विशेष कारण—

चन्द्रगुप्त—मैं नहीं सुनना चाहता। मैं इसी समय उसका जवाब तलब करूँगा।

चन्द्रकेतु—उन्होंने कहा—

चन्द्रगुप्त—उन्होंने जो कुछ कहा था, वह वे स्वयं आकर कहलेंगे। आज इसी समय निश्चय हो जाना चाहिए कि मगधके महाराज चन्द्रगुप्त हैं या चाणक्य !

चन्द्रकेतु—अधीर मत होओ। सुनो—

चन्द्रगुप्त—चन्द्रकेतु, तुम भी मेरा कहना नहीं मानते हो !—जाओ !

(चन्द्रकेतुका धीरे धीरे प्रस्थान।)

चन्द्रगुप्त—ब्राह्मणका दम्भ मेरा धीरज छुड़ाये देता है। एक बार—नहीं पहले—स्पर्धा !—आश्चर्य्य ! इस बार मैं—नहीं—पहले कैफियत सुनूँगा। अविचार नहीं करूँगा। (घूमता है।)

[चाणक्य और चन्द्रकेतुका प्रवेश ।]

चाणक्य—महाराजाकी जय हो ।

चन्द्रगुप्त—(रूखे भावसे प्रणाम करके) मंत्रिवर ! मैंने आज अपने नगर-प्रवेशके उपलक्ष्यमें नगरमें रोशनी करनेकी आज्ञा दी थी । उस आज्ञाका पालन क्यों नहीं किया गया ?

चाणक्य—मैंने निषेध कर दिया था ।

चन्द्रगुप्त—(थोड़ी देर तक स्तब्ध होकर) क्या मैं इसका कारण जान सकता हूँ ?

चाणक्य—कुछ प्रयोजन नहीं है ।

चन्द्रगुप्त—प्रयोजन नहीं है !

चाणक्य—मैंने जो किया है, समझ बूझकर ही किया है ।

चन्द्रगुप्त—तो भी मैं कारण जानना चाहता हूँ ।

चाणक्य—कारण जाननेका समय अभी नहीं आया है । जब आयगा, तब बता दूँगा ।

चन्द्रगुप्त—मंत्री, मगधका महाराज मैं हूँ ।

चाणक्य—(मुसकराते हुए देखते रहते हैं ।)

चन्द्रगुप्त—मंत्री, मैं इस उद्धतताको सहन नहीं कर सकता । मैं इसका न्याय-विचार करूँगा ।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त, तुम उत्तेजित हो गये हो ।—जरा शान्त होओ । (प्रस्थानोद्यत ।)

चन्द्रगुप्त—मंत्री !

चाणक्य—(लौटकर) वत्स !

चन्द्रगुप्त—मैं जानना चाहता हूँ कि इस राज्यका स्वामी मैं हूँ या चाणक्य ?

चाणक्य—महाराज—चन्द्रगुप्त ।

चन्द्रगुप्त—कहाँ ! यह तो मैं नहीं देख रहा हूँ। देखता यह हूँ कि अपने ही साम्राज्यमें मैं बन्दी हूँ, अपने ही घरमें मैं दास हूँ। मंत्री चाणक्य पाटलिपुत्रमें निश्चिन्त बैठकर राज-भोग भोगें और महाराज चन्द्रगुप्त उसे देशदेशान्तरसे आहरण करके ला दिया करें। भारतवर्ष मंत्री चाणक्यके गुणोंका गीत गाया करे और उस गीतके उपादान जुटाया करें महाराज चन्द्रगुप्त। महाराज चन्द्रगुप्त मंत्री चाणक्यकी आज्ञाको सिर झुकाकर माना करें और चाणक्य चन्द्रगुप्तकी आज्ञाको लातसे रोंधा करें।—यदि मेरे और तुम्हारे बीचमें यही सम्बन्ध है, तो जितनी जल्दी यह बन्धन छिन्न हो जाय, उतना ही अच्छा।

चाणक्य—महाराजकी अभिरुचि। चाणक्यने यह मंत्रित्व माँगकर नहीं लिया है। मैं इसी समय अपना पद त्याग करता हूँ।

चन्द्रगुप्त—परन्तु उसके पहले मैं इसकी कैफियत चाहता हूँ।

चाणक्य—मैं कैफियत नहीं दूँगा।

चन्द्रगुप्त—यहाँ तक !—सैनिको ! क़ैद करो।

(सैनिक लोग स्थिर भावसे खड़े रहते हैं।)

चन्द्रगुप्त—सैनिको ! (सैनिकोंके आगे बढ़नेपर चाणक्य बड़े ही शान्त भावसे हाथके संकेतसे उन्हें रोक देते हैं।)

चाणक्य—शूद्रकी इतनी मजाल अब भी नहीं हुई है।—महाराज ! यह लो, मैंने आपका मंत्रित्व त्याग दिया। (मन्त्रीकी पोशाक वग़ैरह उतारकर रख देते हैं) महाराज ! चाणक्य निश्चित होकर राजधानीमें विलास नहीं करता है। वह यहाँ बैठा हुआ एक बड़े भारी साम्राज्यको चला रहा है। और रहा चाणक्यका राज-भोग !—सो वह आहार करता है दो मुट्ठी उबाले हुए चावल और सोता है मृगछालाकी शय्यापर। वह रातके तीसरे पहर कुटीरके आँगनमें उष्ण मस्तिष्कसे

राज्यकी चिन्ता करता हुआ टहलता है। मैं जाता हूँ !—तुम्हारा राज्य है, तुम्हीं उसका शासन करो। (जानेको तैयार होता है; सहसा लौटकर) हाँ, जानेके पहले मैं यह कहे जाता हूँ कि क्यों मैंने आज उत्सव नहीं होने दिया। भूतपूर्व महाराज नन्दके मंत्रीने विद्रोह-मंत्रणाको गर्मी देकर एक बड़ा भारी षड्यन्त्र तैयार किया है। आज रात्रिमें उत्सवके समय उसके दलके लोगोंने नगरपर आक्रमण करनेका इरादा किया था। वे लोग तुम्हारे सोनेके कमरेमें सुरङ्ग काटकर तुम्हारी हत्या करनेके लिए वहाँ तुम्हारा मार्ग देख रहे हैं। मैंने उन लोगोंका वध करनेके लिए सैनिकोंको भेज दिया है। (प्रस्थानोद्यत; फिर लौटकर) हाँ, और भी एक बात है। विजयी सेल्यूकस सिन्धुनदके पार उतर आया है। इस तरह शत्रु चारों ओरसे सशस्त्र हो रहे हैं। यह उत्सवका समय नहीं है। इसी लिए मैंने उत्सव बन्द कर दिया था। (प्रस्थानोद्यत)

चन्द्रकेतु—(चाणक्यके पैरोंपर गिरकर) गुरुदेव, क्षमा कीजिए।

चाणक्य—कैफ़ियत दे चुकनेपर चाणक्य मंत्रित्व ग्रहण नहीं करेगा। (प्रस्थान।)

चन्द्रकेतु—बन्धुवर, मंत्री महाशयको अनुनय करके लौटा लो।

चन्द्रगुप्त—क्यों! जहाँ चाणक्य नहीं है, वहाँ क्या राज्य नहीं चलते हैं! इतना अहङ्कार!—बुरा क्या हुआ! आज मैं मुक्त हूँ। आज मैं सचमुच ही महाराज हूँ।

चन्द्रकेतु—भाई, उपदेश सुनो। उनको हाथ-पैर पकड़कर ले आओ।

चन्द्रगुप्त—चन्द्रकेतु, मैं तुम्हारा उपदेश नहीं चाहता। तुम्हारे अनुरोधसे मैंने चाणक्यको एक बार क्षमा कर दिया था!—पर वह मैंने गलती की थी। ब्राह्मणकी मजाल तो देखो! मैं महाराज हूँ, फिर भी मेरी कोई शक्ति नहीं है! भाईको क्षमा करनेकी भी मुझमें क्षमता नहीं!

मानो राज्यका मैं कोई भी नहीं हूँ!—केवल एक महाराजका अभिनय कर रहा हूँ। इस व्यंग्य अभिनयसे तो सीधी सादी गुलामी अच्छी।

चन्द्रकेतु—गुरुदेव जो कुछ करते हैं, वह तुम्हारी भलाईके लिए।

चन्द्रगुप्त—इसी भलाईके लिए ही क्या ब्राह्मणने मेरे भाई नन्दकी हत्या की थी? उन्होंने और कात्यायनने मेरे भाई नन्दकी हत्या करके पैशाचिक उल्लाससे उसके मृत शरीरके ऊपर ताण्डव नृत्य किया था। क्या मैंने वह देखा नहीं था?

चन्द्रकेतु—किन्तु इस सिंहासनके लिए तुम उनके ऋणी हो।

चन्द्रगुप्त—ऋणी!—जाओ, मैं जानता हूँ कि तुम अप्रिय वाक्य कहनेमें खूब दक्ष हो।

चन्द्रकेतु—अप्रिय सत्य बोलनेका अधिकार एक बन्धुको ही होता है।

चन्द्रगुप्त—पर वह बन्धुत्व होता है बराबरवालोंमें।

चन्द्रकेतु—(थोड़ी देर चुप रहकर) महाराज, मेरी उद्धतताको क्षमा कीजिए। भविष्यमें मैं महाराजके साथ बन्धुत्वकी स्पर्धा नहीं करूँगा। अच्छा तो अब मैं विदा होता हूँ।—पर जानेके पहले एक बात कहे जाता हूँ कि सम्पत्तिकालमें महाराज मेरे बन्धुत्वकी उपेक्षा करते हैं, तो करें; किन्तु विपत्तिमें मैं उस अधिकारसे वंचित न रक्खा जाऊँ। यदि मेरी सहायताका महाराजको कभी कोई प्रयोजन आपड़े, तो आजकी बातोंसे लज्जाके कारण मुझे बुलानेमें जरा भी दुविधा न करें। मेरे जीवनसे यदि महाराजका कोई साधारण भी लाभ हो, तो वह जीवन मैं हँसते हँसते महाराजके लिए सदा ही दे देनेको प्रस्तुत हूँ।

(प्रस्थान।)

(चन्द्रगुप्त थोड़ी देर तक चुप खड़े रहते हैं। पाँच सशस्त्र सैनिक प्रवेश करते हैं। उनमेंसे एक आदमीके हाथमें कटा सिर है। उस सिरको चन्द्रगुप्तको दिखा कर वह कहता है—)

सैनिक—महाराज यही दलपतिका सिर है।

चन्द्रगुप्त—कौनसे दलपतिका ?

सैनिक—पच्चीस घातक महाराजके सोनेके कमरेमें सुरंग काटकर अस्त्र लिये हुए छुपे थे। हमें मंत्री महाशयने उनके वध करनेके लिए वहाँ भेजा था। हम लोग उन पच्चीसों घातकोंको वध कर आये हैं और यह उनके दलपतिका सिर ले आये हैं।

चन्द्रगुप्त—(सिर देखकर) यह तो नन्दका साला वाचाल है!—अच्छा जाओ। (सैनिकगण चले जाते हैं।)

चन्द्रगुप्त—तभी तो !

[एक सेनाध्यक्षका प्रवेश]

सेनाध्यक्ष—महाराजकी जय हो।

चन्द्रगुप्त—क्या संवाद है ?

सेनाध्यक्ष—विद्रोही लोग नगरको आक्रमण करने आये थे; परन्तु हम लोगोंको होशियार और सशस्त्र देखकर लौट गये।

चन्द्रगुप्त—किसने तुम लोगोंको होशियार रहनेको कहा था ?

सेनाध्यक्ष—मंत्री महाशयने।

(चन्द्रगुप्त एक दृष्टिसे शून्यकी ओर देखने लगते हैं। सेनाध्यक्ष धीरे धीरे चला जाता है। चन्द्रगुप्त पहलेकी तरह देखते रहते हैं।)

तृतीय दृश्य।

स्थान—सेल्यूकसका शिविर।

समय—रात्रि।

[सेल्यूकस और कात्यायन।]

सेल्यूकस—किन्तु उसकी सैन्य-संख्या छः लाख है।

कात्या०—चाणक्यके मंत्रित्व परित्याग कर देनेसे वह छः लाख सेना इस समय विश्रृंखल हो गई है। मैंने इस बातका पता लगा लिया

है। आप मेरा विश्वास कीजिए। आक्रमण करनेके लिए यही ठीक समय है।

सेल्यू०—परन्तु हमारी सेना संख्यामें बहुत कम है।

कात्या०—आप कुछ भय न कीजिए। भूतपूर्व महाराज नन्दके पक्षमें नगरके बहुतसे बड़े आदमी हैं। वे लोग निश्चय ही अपने दल-बलसहित यूनानी सेनाके साथ योग देंगे।

सेल्यू०—निश्चय कैसे ?

कात्यायन—मैं जानता हूँ कि यह निश्चित है। चन्द्रकेतुकी सेना अपने राज्यको लौट गई है। वह भी सम्भवतः यूनानी सेनाके साथ योग देगी। मैं सोच रहा हूँ कि अभीतक उसने हमारी सेनाके साथ योग क्यों नहीं दिया।

[हेलेनका प्रवेश।]

हेलेन—अरे ब्राह्मण, सब लोग तेरे ही ऐसे विश्वासघातक नहीं होते हैं।

सेल्यू०—हेलेन, तुम इस समय यहाँ कैसे आ गईं ?

हेलेन—मैं पासके कमरेमें पढ़ रही थी। बीच बीचमें मुझे इस ब्राह्मणकी दबी हुई आवाज सुन पड़ती थी। इससे मुझे कौतूहल हुआ। किताब बन्द करके मैंने कुछ देर सुना। सुनकर मैं भीतर ठहर न सकी।—ब्राह्मण, तू विश्वासघातक है।

कात्यायन—मैं ?

हेलेन—एक बार नहीं, सौ बार। जो राजाके विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर और एक जातिके उच्छेद करनेका संकल्प करके जन्मभरके स्नेहसे बढ़ी हुई राजभक्तिको विसर्जन करके आततायियोंके साथ सन्धि

करता है, जो शान्तिके क्षेत्रपर रक्तकी नदी बहाना चाहता है, वह केवल उसी जातिका शत्रु नहीं है, प्रत्युत समस्त मानव-जातिका शत्रु है। वह नियम और श्रृंखलाका शत्रु है, वह धर्मका शत्रु है। ऐ ब्राह्मण ! तूने मेरे पिताकी बुझती हुई जय-लालसाको हवा देकर फिर प्रज्वलित कर दिया है। दो बहुत बड़ी सभ्य जातियोंके मध्यमें तू खाई खोद रहा है। तेरे लिए नरकमें भी स्थान नहीं मिलेगा।

कात्यायन—किन्तु पाणिनि—

हेलेन—पाणिनि तो व्याकरण है।

कात्यायन—उसमें वेदान्तका सार है।

हेलेन—तू मूर्ख है !—दूर हो।

(कात्यायन चला जाता है।)

हेलेन—पिता, इस ब्राह्मणसे मैं संस्कृत पढ़ती थी। स्वप्नमें भी नहीं जाना था कि यह इतना बड़ा दुरात्मा है। यदि यह जान पाती, तो उसी क्षण इसको दूर कर देती।

सेल्यू०—हेलेन !

हेलेन—पिता !

सेल्यू०—तुम्हारी माता यूनानी थी या हेलेट ?

हेलेन—मेरी माता देवी थी।

सेल्यू०—तभी उसकी कन्या यूनानके गौरवको मिटाना चाहती है !

हेलेन—यूनानका गौरव जगतमें विशृंखला और अत्याचार फैलानेसे नहीं है। यूनानका गौरव सुकरात और डिमास्थनीज, अफ़लातून और अरस्तू, होमर और यूरीपाइडिससे है। यूनानका गौरव फिडियस और लाइकर्गस, सैफो और पेरिक्लिस, हीरोडोटस और स्काइलिससे है। असभ्य यूरुपखंडको सूर्य्यकी भाँति प्रकाश देनेसे यूनानका गौरव

है, जैसे कि आर्ययुगमें भारतवर्ष एशियाको प्रकाश देता आ रहा है। यूनान और भारतवर्षने—संध्याके सूर्य्य और पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति पूर्व और पश्चिम आकाशको बाँट लिया है। उनके संघातसे प्रलय हो जायगा।—युद्ध तो हत्याका व्यवसाय है !

सेल्यू०—तब कहना चाहिए कि मिल्टाइडिस और लियोनिडास यही हत्याका व्यवसाय करते थे !

हेलेन—उन लोगोंने यह व्यवसाय स्वीकार किया था एक आक्रान्त देशको बचानेके लिए, देशमें अग्निदाह, मरी और लूटमारको निवारण करनेके लिए, शान्तिकी शुभ्रध्वजाकी रक्षाके लिए—हड़प कर जानेके लिए नहीं।

सेल्यू०—मैं यह बात नहीं मानता।

हेलेन—पिताजी, यदि युद्ध आत्मरक्षाके लिए अनिवार्य हो, तो कीजिए। क्या किया जाय, और कोई उपाय ही नहीं। किन्तु युद्ध कीजिए शान्ति-रक्षाके लिए, शान्ति भङ्ग करनेके लिए नहीं। एक जाति सुखसे शान्तिकी गोदमें निद्रा ले रही है और आप उस निद्राको भङ्ग करना चाहते हैं, निश्चिन्त हृदयोंमें आतंक उत्पन्न करना चाहते हैं, और एक महती सभ्यताका गला घोंटना चाहते हैं। पिताजी, यह क्या उचित है ?

सेल्यू०—हम कन्याकी वक्तृता नहीं सुनना चाहते। बचपनमें माताकी वक्तृता सुनी थी, अब क्या बुढ़ापेमें कन्याकी वक्तृता सुननी पड़ेगी ? अरस्तूने कहा है—

हेलेन—ओह !—एक ओर अरस्तूकी अकथित उक्ति और दूसरी ओर पाणिनिकी आध्यात्मिक व्याख्या—नाकों दम है ! बीच बीचमें जी चाहता है कि आत्म-हत्या कर डालूँ।

सेल्यू०—क्यों हेलेन ?

हेलेन—पिताजी, इस महान् विश्व-परिवारको जिस भाँति विद्वेष और अहंकारने पृथक् कर रक्खा है, उतना नदियों, पर्वतों और समुद्रोंने भी नहीं किया है।

सेल्यू०—जाओ, मैं ये बातें नहीं सुनना चाहता।—दाई !

[दाईका प्रवेश ।]

सेल्यू०—कन्याके पास रहो। जाओ हेलेन, सो रहो। (प्रस्थान।)

हेलेन—(थोड़ी देर ऊपरको देखकर) हिंसा अपने सहस्र फणोंको फैलाकर दौड़ी चली आ रही है और संसार दृष्टिमुग्धवत् उसकी ओर चुपचाप ताक रहा है।—कोई उपाय नहीं है।—चलो दाई।

[दोनों जाती हैं ।]

चतुर्थ दृश्य ।

स्थानः—यूनान; गाँवमें एक निर्जन कुटीरकी कोठरी ।

समय—प्रभात ।

[एण्टीगोनस और उसकी माता बातें करते करते बाहर निकल आते हैं ।]

एण्टी०—नहीं, मैं तुम्हारे हाथका पानी नहीं पियूँगा। मैं केवल यही जाननेके लिए आया हूँ कि मेरा पिता कौन है।

माता—मैं तो तुम्हारी माँ हूँ।—मातृस्नेहका क्या कोई ऋण ही नहीं होता है ?

एण्टी०—स्नेहका ऋण !—(व्यंग्यसे हँसकर) खूब ! मुझको घृणित भिक्षुकके रूपमें संसारमें लाकर और फिर एक मुट्ठी भर अन्नके लिए पशुकी भाँति हाटमें बेचकर अब स्नेहका दावा करती हो ! तुम्हें लज्जा नहीं आती !

माता—मैंने गलती की थी—अन्याय किया था। किन्तु क्या वह क्षमा नहीं हो सकता ? बेटा, तुम कैसे समझोगे क्षुधाकी उस ज्वालाको, जिसके तापसे पागल होकर मैंने वह कार्य किया था। तदनन्तर—कितने दीर्घ दिन और कितनी निद्राहीन रातोंको मैंने गरम गरम आँसुओंसे सींचा है। इसी मुखका स्मरण किया है और मेरी आँखोंके आगेसे संसार लुप्त हो गया है। तुझे बेचकर जो मुट्ठी भर अन्न पाया था, उसको मुँहमें डाला है और वह मेरी तप्त साँसोंकी उष्णतासे भस्म हो गया है!—क्षुधाकी ज्वाला कैसी होती है, तू क्या समझेगा! तू क्या समझेगा!

एण्टीगोनस—और तुम कैसे जानोगी इस अन्तर्गूढ़ सघन व्यथाको, इस मानसिक व्याधिकी मर्म-पीड़ाको, जिसके व्यंग्यसे पागल होकर मैं पृथ्वी भरमें उल्कासदृश वेगसे घूमता फिरा हूँ; सिंहके गर्जनको, व्याघ्रके मुँह फाड़नेको, अग्निकी जिह्वाको, ओलोंके गिरनेको और शत्रुके खड्गको तुच्छ समझता हुआ भटकता फिरा हूँ, और जिसकी ताड़नासे लगभग आधी पृथ्वी घूमकर तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अपने शौर्य्यसे सेनाध्यक्ष हुआ—किन्तु तुमने जिस कलंककी छाप मेरे ललाटमें दाग दी थी, उसकी कालिमा न गई!—ऐ स्त्री! बतला, मेरा पिता कौन है ?

माता—बतलाती हूँ, शान्त होओ।

एण्टी०—शान्तिका कोई प्रयोजन नहीं है!—बतलाओ, मेरा पिता कौन है ?

माता—(अर्ध स्वगत) अहा! यह वही मुख है! कितनी बार स्वप्नमें इसी मुखको देखा है। कितनी बार इसको अपनी छातीसे लगाकर कम्पित स्नेहसे बार-बार चुम्बन किया है। कितनी बार—

एण्टी०—बोलो, मेरा पिता कौन है ?

माता—पिताहीके जाननेके लिए तेरा इतना आग्रह है !—मैं क्या तेरी कोई नहीं हूँ !—

एण्टी०—नहीं, कोई नहीं हो। उस सम्बन्धको तुमने अपने हाथों तोड़ डाला है। संसारमें सबसे बड़ा पैशाचिक काम तुमने किया है! —मा होकर तुमने संतानको बेचा है।

माता—उसके लिए क्षमा चाहती हूँ।—यदि क्षमा न करे, तो कमसे कम एक बार मा कहकर पुकार—केवल एक बार, एक बार—

एण्टी०—मैं यहाँ एक स्त्रीका रोना सुननेके लिए नहीं आया हूँ। —बोल, मेरा पिता कौन है!

माता—मैं तेरी कोई नहीं हूँ ?—

एण्टी०—कोई नहीं।

माता—तो भी मैंने तुझको गर्भमें धारण किया था, दूध पिलाया था, छातीपर लिटाकर सुलाया था!

एण्टी०—अनुग्रह किया! गला घोटकर तुमने संतानका वध नहीं किया, यह बड़ी भारी दया की! तुमने मुझे वध क्यों नहीं कर डाला ? बेच डालनेसे तो वध कर डालना ही अच्छा था।

माता—बेटा!

एण्टी०—मेरा पिता कौन है ?—जल्दी बताओ। नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा!—बताओ, मेरा बाप कौन है ? बाप कौन है ?

माता—अच्छा तो सुन। मैंने तुझे तेरे पिताका नाम इतने दिनों तक नहीं बताया, इसका कारण यह था कि तेरे पिताने मना कर दिया था। जिस समय हमारा विवाह हुआ—

एण्टी०—विवाह हुआ!

माता—उस समय मेरी उम्र १५ सालकी थी। जो कुछ उन्होंने समझाया वही मैंने समझ लिया।—हमारा विवाह छिपकर हुआ था।

एण्टी०—विवाह हुआ था!

माता—उसके अनन्तर उन्होंने एक ऊँचे घरानेकी कन्याके साथ विवाह करके मुझे छोड़ दिया—हाय रे कठोर पुरुष!

एण्टी०—विवाह हुआ था!—हेलेन! तब तुम्हारे पानेकी आशा मालूम होती है कि कोरी दुराशा नहीं है।—सेल्यूकस!—क्यों चौंक क्यों पड़ीं?

माता—किसका नाम लेता है?

एण्टी०—क्यों! सेल्यूकसका।

माता—वह नाम तूने कैसे जाना! मैंने तो अब भी नहीं बतलाया है!

एण्टी०—मैंने कैसे जाना! मैं तो उन्हींके अधीन सेनाध्यक्ष रहा हूँ।

माता—(आग्रहके साथ) उनके अधीन? और फिर भी पहिचान न पाया!

एण्टी०—(आश्चर्य्य सहित) पहिचान न पाया!

माता—उन्होंने भी न पहिचान पाया! हायरे कठोर पुरुष! अपनी संतानको भी नहीं पहिचानते! मैं तो एक लाख लड़कोंमेंसे भी अपने लड़केको खोजकर निकाल सकती हूँ—चाहे वह कितना ही बड़ा हो गया हो, उसको चाहे जितने दिनोंसे न देखा हो—

एण्टी०—क्या कहती है औरत?—उन्मादिनीकी भाँति क्या बके जाती है!

माता—नहीं नहीं, मैं उन्मादिनी नहीं हूँ। यद्यपि मैं यह नहीं कह सकती कि इतना सब कुछ होने पर भी मुझे उन्माद क्यों नहीं हुआ—

मैं पागल क्यों नहीं हो गई। वे सम्राट् हैं और मैं उनकी धर्मपत्नी, उनकी महिषी—राहकी भिखारिनी हूँ, जिसे पेटकी ज्वाला बुझानेके लिए अपनी सन्तान तकको बेचना पड़ा है। (रोने लगती है।)

एण्टी०—(अर्ध स्वगत) यह क्या ! तब क्या—

माता—बेटा, ये ही सेल्यूकस तेरे पिता हैं।

(एण्टीगोनस दीवाल पकड़कर खड़ा रह जाता है, तदनन्तर एकाएक माताके पैरोंपर गिरकर कहने लगता है—)

एण्टीगोनस—मा, मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार किया है !—अभागिनी परित्याग की हुई मेरी मा !—

माता—ना, यह सब उसके वास्ते। मैं अभागिनी और परित्यक्ता हूँ उसके वास्ते। तेरे लिए मैं केवल मा हूँ ! और एक बार मा कहकर पुकार बेटा ! सारे कष्ट—सारी यंत्रणायें—भूल जाऊँ;—और भूल करके केवल वही पुकार सुनूँ।

एण्टी०—तुम राजमहिषी हो, तुम्हारी यह दशा मा !—

माता—केवल मा—केवल मा—और कुछ नहीं। और कुछ नहीं। मा कहके पुकार—मा कहके पुकार !

एण्टी०—मा मेरी—

माता—और एक बार—और एक बार !—

एण्टी०—यह क्या ! तुम्हारे पैर लड़खड़ा रहे हैं। तुम सीधी होकर नहीं खड़ी हो सकती हो—चलो मा, तुमको लिटाकर मैं तुम्हारी चरणसेवा करूँ।—मा !

माता—बेटा मेरा ! फिर एक बार पुकार !

एण्टी०—मा !

माता—बस यही स्वर्ग है !—मेरा सिर घूम रहा है !—बेटा—एण्टीगोनस ! तू कहाँ है ! (हाथ फैलाती है।)

एण्टी०—यह हूँ मा—मैं यह—

(एण्टीगोनस अपनी गिरती हुई माको पकड़ लेता है। वह उसके कन्धेपर भार देकर चली जाती है।)

पञ्चम दृश्य।

स्थान—चन्द्रगुप्तका महल।

समय—रात्रि।

[चन्द्रगुप्त अकेला।]

चन्द्रगुप्त—अन्तको हमारी ही प्रजा और हमारी ही सेनाने शत्रुसे मेल कर लिया !—बाहर भी शत्रु हैं, घरमें भी शत्रु हैं। अब बचना कठिन है। जान पड़ता है, यह प्रकृतिका प्रतिशोध है—प्रकृति बदला लिये बिना न छोड़ेगी। जो हितैषी था, उसको शत्रु समझकर देशसे निकाल दिया।—(वह निकालना नहीं तो और क्या था !) बड़े अभिमानसे बन्धुवर मुझे छोड़कर चले गये। आज मुझे उस दिनकी उनकी अभिमानसे छल-छल करती हुई आँखें याद आ रही हैं। मानो वे यह कह रही हैं—" चन्द्रगुप्त, तुम इतने कृतघ्न हो ! मैंने तुम्हें आश्रय दिया था, सेना दी थी, तुम्हारे लिए मैं प्राण देनेको तत्पर रहता था, तुम्हारी जीवन-रक्षा की थी, मगधके सिंहासनपर तुमको बिठाया था। उसका क्या यही पुरस्कार है ? "—चन्द्रकेतु ! यदि इस समय तुमको देख पाता, तो तुम्हारे पैर पकड़कर क्षमा माँगता और कहता—"साम्राज्य चला जाय, जीवन चला जाय—तुम क्षमा करो, केवल इतना सुने जाऊँ कि तुमने क्षमा कर दिया !"—जाय—साम्राज्य

नष्ट हो जाय । मैं युद्ध न करूँगा । मैं स्वयं अपनेसे बदला लूँगा ! मगधका साम्राज्य मेघोंके बने हुए प्रासादकी भाँति शून्यमें मिल जाय । मैं क्षुब्ध नहीं होऊँगा ।

[एक सैनिकका प्रवेश ।]

चन्द्रगुप्त—क्या समाचार है सैनिक ?

सैनिक—महाराज, किलेका दक्षिणकी ओरका कोट भग्न हो गया है ।

चन्द्रगुप्त—अच्छा हुआ ! जाओ !—यह क्या ! मेरी ओर क्या देख रहे हो !—जाओ ।

सैनिक—शत्रु-सेना किलेमें प्रवेश कर रही है ।

चन्द्रगुप्त—करने दो—जाओ ।

(सैनिक चला जाता है ।)

चन्द्रगुप्त—मैं युद्ध नहीं करूँगा । मैं स्वयं अपनेसे बदला लूँगा । मैं आत्महत्या करूँगा ।

[दूसरे सैनिकका प्रवेश ।]

सैनिक—महाराज—

चन्द्रगुप्त—तुम कौन हो ? चले जाओ ।

सैनिक—शत्रु—

चन्द्रगुप्त—शत्रु कौन है ? शत्रु कोई नहीं है । वे लोग परम मित्र हैं । आने दो ।—जाओ ।

(सैनिक चला जाता है ।)

चन्द्रगुप्त—नहीं जानता कि शत्रु कौन हैं और मित्र कौन हैं । बाहर भी शत्रु हैं, घरमें भी शत्रु हैं । बड़ी भारी नदीके बीचमें तूफान उठ रहा है । इस नौकाका कोई कर्णधार या खिवैया नहीं है । वह इस तरंगमें थपेड़े खाकर झोखे खा रही है । दे झोका, दे झोका !

डूब जायगी, अब देर नहीं है। कैसा आनन्द है! चाणक्य नहीं है जो सलाह दे, चन्द्रकेतु नहीं है जो प्राण दे। दे झोका, दे झोका!

[तृतीय सैनिकका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—लो, एक और आ गया!

सैनिक—महाराज!

चन्द्रगुप्त—कौन महाराज? यहाँ कोई महाराज नहीं है। (कठोर स्वरसे) चले जाओ। (सैनिकका प्रस्थान।)

[बाहरसे रणभेरीकी ध्वनि]

चन्द्रगुप्त—यह काहेका शब्द है? इतनी रात गये भेरी-ध्वनि! यह क्या! यह तो युद्धका कोलाहल है! युद्ध! किसका किसके साथ युद्ध!—यह फिर रणभेरीका शब्द।—चन्द्रगुप्त! तुम जीते हो या मर गये हो? इस भेरी-ध्वनिको सुनकर भी तुम निर्जीव भावसे घर बैठे हुए हो! यह तुम्हारी सेना युद्ध कर रही है—प्राण दे रही है, और तुम घरके कमरेमें बैठे हुए हो! उठो वीर! इस अगाध नैराश्यके ऊपरसे एक बार विद्युत् चमकाकर तो चले जाओ। इस प्रभंजनकी हुंकारके ऊपर तुम्हारा भीम वज्रनाद गर्ज उठे—उसके अनन्तर सब प्रलय-कल्लोलमें मिल जाय!—जय, मगधकी जय!—

[मुराका प्रवेश।]

मुरा—चन्द्रगुप्त!—यह क्या है!

चन्द्रगुप्त—मा! विदा दो। मैं जाता हूँ।

मुरा—कहाँ!

चन्द्रगुप्त—युद्ध करने। युद्धमें मरूँगा।—पिंजराबद्ध व्याघ्रकी भाँति मैं अपनेको कोंच-कोंचकर नहीं मरने दूँगा। युद्ध-क्षेत्रमें नक्षत्रजटित

मुक्त नीलाकाशके नीचे अपनी सेनाके बीचमें खड़े होकर युद्ध करते करते मरूँगा ।

मुरा—बेटा मरोगे क्यों ! शत्रु आया है—युद्ध करो । तुम वीर हो—मरोगे क्यों !

चन्द्रगुप्त—इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है । बाहर शत्रु हैं, घरमें शत्रु हैं । कौन शत्रु है और कौन मित्र है, यह मैं पहिचान नहीं सकता । शत्रु-सेना एक समुद्र—

मुरा—तथापि—

चन्द्रगुप्त—इसमें तथापि नहीं है । मैं मरना ही चाहता हूँ । यह युद्धका कोलाहल हो रहा है ।—सैनिक !

[सैनिकका प्रवेश और अभिवादन ।]

चन्द्रगुप्त—मैं इसी समय युद्ध करने जाऊँगा । पार्श्वरक्षियोंको आज्ञा दो । यह देखो, बार बार रण-भेरीका शब्द हो रहा है !—जाओ ।

(सैनिक चला जाता है ।)

नेपथ्यमें—महाराज चन्द्रगुप्तकी जय ।

चन्द्रगुप्त—यह क्या ! महाराज चन्द्रगुप्तकी जय ! मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ !—नहीं, ये शत्रु ही व्यंग्यसे जयध्वनि कर रहे हैं ! महाराज चन्द्र-गुप्तकी जय तो चाणक्य और चन्द्रकेतुके साथ ही साथ चली गई । यह फिर और भी समीप ! और भी समीप ! यह क्या ! यह क्या ! कान-हीके पास ! !—यह तो परिचित स्वर माळूम होता है !—ये कौन हैं !

(पीछेको मुड़ते हैं ।)

[लहूलुहान चन्द्रकेतु, छाया और चाणक्यका प्रवेश ।]

चन्द्रगुप्त—स्वप्न ! स्वप्न !

चन्द्रकेतु—आ गया भाई—गुरुदेवको पैरों पड़कर ले आया हूँ । अब और कोई भय नहीं है !

मुरा—गुरुदेव, रक्षा करो! (चाणक्यके पैरोंपर गिर पड़ती है। छाया मुराको पकड़कर उठा लेती है।)

चाणक्य—उठो मुरा! चाणक्य सब कर सकता है; केवल मरे हुए मनुष्यको जिला नहीं सकता।—कोई भय नहीं है, चन्द्रगुप्त! उठो। इसी समय युद्धके लिए तैयार हो जाओ। यूनानियोंकी क्या सामर्थ्य है, जो चाणक्यकी सृष्टिको व्यर्थ कर दें!

चन्द्रकेतु—बन्धु! एकटक क्या देख रहे हो?—आओ, इस विपत्तिमें एक बार कंधेसे कंधा भिड़ाकर मजबूतीसे खड़े हो जायँ। इन दो वक्षःस्थलोंके ऊपर यदि पर्वत भी टूटकर पड़े, तो वह भी चूर्ण हो जायगा।

चन्द्रगुप्त—चन्द्रकेतु!—बन्धु! भाई!—(बलपूर्वक आलिंगन करता है।)

षष्ठ दृश्य।

स्थान—मगधमें चंद्रकेतुका घर।

समय—रात्रि।

[छाया और उसकी सहेलियाँ।]

छाया—नाचो, गाओ। मैं भी तुम्हारे संग योग दूँगी। महाराज चन्द्रगुप्तने यूनानी लोगोंपर युद्धमें जय पाई है।—बड़ा ही आनन्द है!

१ सखी—सखि! तुम जो उनका जय-गान गाती हो, उसे क्या वे सुन सकते हैं?

छाया—मेरे गानेमें मुझको ही आनन्द है; उनके सुनने न सुननेसे क्या? जिस समय वसन्तका आगमन होता है, उस समय तुमने देखा होगा कि वायुकी हिल्लोलोंसे प्रकृति फूल और पत्तोंसे स्वयं ही

सिहर उठती है—चाहे कोई देखे या न देखे, उसको इससे कुछ मतलब नहीं। कुंजमें कोयल अपने आप ही गा उठती है—कोई सुने या न सुने, उससे उसका कुछ जाता आता नहीं। वह अपने सुखमें आप ही पूर्ण है।

२ सखी—तुम उनसे प्रेम करती हो, तो क्या तुम नहीं चाहती हो कि वे भी तुमसे प्रेम करें? तुम बदला नहीं चाहतीं?

छाया—मेरा प्रेम मेरी सम्पत्ति है। मेरा प्रेम अपनेमें ही पूर्ण है। उसी प्रेममें मैं मग्न हूँ। उनके देखनेका अवकाश ही नहीं पाती हूँ।

३ सखी—आश्चर्य है! वे तुमसे प्रेम नहीं करते, पर तुमने अपने जीवनको तुच्छ समझकर उनके जीवनकी रक्षा की है।

छाया—सखी, यदि मेरे हज़ार जीवन होते, तो उन सबको ही मैं अनायास उनके चरणोंमें समर्पण कर देती।—दुःख यह है कि उनको देनेके योग्य मेरे पास कुछ नहीं है।

२ सखी—क्या नहीं है?

छाया—मेरे रूप नहीं है।

३ सखी—कौन कहता है कि तुम्हारे रूप नहीं है?

छाया—यदि मेरे रूप होता, तो वे एक बार मुझे निहार कर अवश्य देखते। मेरी इच्छा होती है कि संसारमें जितना सौन्दर्य है, वह सब मुझमें आ जाय और मैं उस सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशिको गोमुखीकी धाराकी नाईं अश्रान्त धारसे उनके चरणोंपर बहा दूँ। किन्तु मेरे पास कुछ भी नहीं है।

१ सखी—तुम्हारा अमूल्य हृदय तो है।

छाया—पुरुष उसको नहीं चाहते, वे चाहते हैं नारीका रूप।

२ सखी—पुरुष कुछ समझते नहीं।

छाया—(दीर्घ श्वास लेकर) नहीं—तुम लोग मुझे रुलावोगी !—नहीं। आज महोत्सव है। खुशी मनाओ, खुशी मनाओ—जब तक तुम्हारे जागरणसे मलीन हुए मुखपर प्रातःकालके सूर्यकी सुनहरी किरणें न आ पड़ें, जब तक पक्षियोंका कलरव तुम्हारी क्षीण होती हुई कण्ठ-ध्वनिके साथ मिल न जाय, तबतक गाये जाओ।

(नृत्य गीत।)

रसिया सारंग।

नाचो गाओ सब सुन्दरियो, हिल-मिल है आनन्द महान॥
बड़ी खुशीका यह दिन आया, गाओ मंगल-गान।
और बजाओ बीन पखावज, सुना सुरीली तान॥
जीवन-नौका आज चलाओ, सुख-सागरमें डाल।
ताल तालपर चले नाचती, खोल चढ़ा दो पाल॥
उछल उठे नव नृत्य उल्लसित ऐसा खेलो खेल।
मृत्यु और जविन दोनोंमें, हो जाने दो मेल॥
स्वर्ग-लोक धरतीपर आवे, मेटे सारा शोक।
धरती उठकर मिले स्वर्गसे, ऐसा हो आलोक॥
चंचल चरणोंके रखनेमें, उठे मनोहर लास्य।
नयनोंमें हो उज्ज्वल आभा, सरस अधरमें हास्य॥
उठे मधुर गंभीर गीति, ले लूट सूर्य औ चंद।
दुसह पुलकयुत कंपित पृथ्वी लाली लहे अमंद॥

[दूरमें मुराका प्रवेश।]

मुरा—छाया ! छाया !—उत्सवमें मस्त है।—अभागिनी अब भी नहीं जानती कि युद्धमें उसके भाई चन्द्रकेतुकी मृत्यु हो गई है।—किन्तु जब जानेगी—नहीं, यह दुःसंवाद मैं क्यों दूँ ? जगतमें दुस्संवाद लाकर देनेवालोंका अभाव नहीं है। (अग्रसर होकर) छाया !

छाया—(चौंककर) कौन ?—मा !

मुरा—छाया, एक संवाद है।

छाया—क्या है मा ?

मुरा—छाया, इतने दिनोंके अनन्तर मेरे जीवनकी साध पूरी हुई है। (छायाको वक्षःस्थलमें चिपटाकर) बेटी, तुम मेरी भावी पुत्रवधू—भारतकी भावी सम्राज्ञी हो।

छाया—राजमाता, छाया चन्द्रगुप्तके पत्नीत्वको और भारत-सम्राज्ञीत्वको, दोनोंको समान रूपसे तुच्छ गिनती है। यदि चन्द्रगुप्त भारतके सम्राट् हैं, तो छाया भी एक राजकन्या है। उपहासका प्रयोजन नहीं है।

मुरा—यह क्या छाया ! मैंने भला कभी तेरे साथ उपहास किया है ? बेटी, यह मैं बिलकुल सच कह रही हूँ।

छाया—(अर्ध स्वगत) सच कह रही हो !—यह सच है ! यह तो मेरी धारणासे भी परे है। यह निष्ठुर सौभाग्य—यह इतना आकस्मिक है ! इतना तीव्र है ! इतना असह्य है !—मा ! मा !—

(मुराकी छातीसे लगकर रोने लगती है।)

मुरा—यह क्या ! रोती क्यों हो बेटी ?

छाया—नहीं मा, नहीं रोऊँगी—देवगण पुष्पवृष्टि करो।—यह क्या ! आकाश और भी नीला, और भी गाढ़ा, और भी उज्ज्वल जान पड़ता है। पृथ्वी मन्दारके सौरभसे भर गई है। वायु वीणाकी झंकारसे व्याप्त हो गई है। यह क्या !—मैं स्वर्गमें हूँ या मर्त्यलोकमें ! मैं कुसुमोंकी शय्यापर लेटी हुई हूँ या मलय-हिल्लोलोंमें बही जा रही हूँ !—मैं कहाँ हूँ, और प्रियतम, तुम कहाँ हो !—प्राणाधिक, तुम कहाँ हो ! यही तो हैं मेरे प्यारे चन्द्रगुप्त ! (सहसा घुटने टेककर) प्राणेश्वर ! जीवनसर्वस्व ! मेरे देवता ! क्षमा करो। मैंने बहुत अनुचित बातें कहीं हैं। मैं अभागिनी पितृमातृहीना बालिका हूँ। मेरे सैकड़ों दोष

हैं।—मुझे क्षमा करो। (ऊपरको दोनों हाथ उठाकर) हे ईश्वर, ऐसा कर कि यह स्वप्न न हो। (ऊपरको देखती रह जाती है।)

[चाणक्यका प्रवेश।]

चाणक्य—मुरा—यह क्या! यह सब क्या है?

मुरा—विजयोत्सव है।

चाणक्य—ओः! (थोड़ी देर एकटक छायाकी ओर देखकर और लम्बी साँस लेकर) जाने दो।—मुरा, मैंने सन्धि कर ली है।—पर अभी सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर नहीं हुए हैं।

मुरा—सन्धिकी शर्तें क्या हैं गुरुदेव!

चाणक्य—महाराज चन्द्रगुप्त सेल्यूकसको ५०० हाथी देंगे; बदलेमें सेल्यूकस चन्द्रगुप्तको हिन्दूकुशके दक्षिण और पूर्वका समस्त जीता हुआ राज्य अर्पण करेंगे। और संधि-रक्षाकी जमानतके रूपमें चन्द्र-गुप्तके साथ सेल्यूकसकी कन्याका विवाह होगा।

मुरा—यह क्या! नहीं गुरुदेव, मुझे सम्राट् सेल्यूकसकी कन्या नहीं चाहिए। (छायाको छातीसे लगाकर) यही मेरी पुत्रवधू है।

चाणक्य—किन्तु मुरा, यह चाणक्यकी मन्त्रणा है।

मुरा—किन्तु यह बेचारी।—

चाणक्य—राज्यके कल्याणके निमित्त छाया निश्चय ही अपने तुच्छ स्वार्थको बलि दे सकती है। (प्रस्थान।)

मुरा—छाया!—यह क्या! मुख राखके समान सफेद हो गया, ज्योतिहीन आँखें स्थिर हो रहीं। खुले हुए ओठोंमें अव्यक्त वेदना भर गई। निश्चल पत्थरकी मूर्तिके समान खड़ी हो, मेरी अभा-गिनी बेटी! (प्रस्थान)

छाया—तुच्छ !—तुच्छ स्वार्थ ! तुम क्या जानों ब्राह्मण ! नहीं, पुरुषके निकट नारीके सुख-दुःख, यहाँ तक कि नारीका जीवन भी, तुच्छ है । ईश्वर !—यह क्या किया ? एक साथ ही प्रेम और मृत्यु, आशा और निराशा, स्वर्ग और नरक । पृथ्वी चक्कर खाती है । आकाशमें एक एक नक्षत्र सूर्य्यकी भाँति जल-जलकर बुझ रहा है । एक यशोगाथा मृदंगकी तालपर उठकर दीर्घ श्वासमें मिली जा रही है । यह ! यह ! (ऊपरको ताकती रह गई ।)

पंचम अंक।

प्रथम दृश्य।

स्थान—नन्दका पूर्वकथित प्रमोदोद्यान।

समय—रात्रि।

[सेल्यूकस और हेलेन।]

सेल्यूकस—असभ्य चन्द्रगुप्तके साथ यूनानके सम्राट्की कन्याका विवाह ! मैं इस हेय संधिको करके मुक्ति मोल नहीं लेना चाहता। मैं ऐसा नहीं करूँगा।—कभी नहीं !

हेलेन—पिताजी, अब और दर्प शोभा नहीं पाता। अपमानकी हद हो चुकी। अब भी सिर ऊँचा किये हो ! लज्जा नहीं आती !

सेल्यूकस—आक्रमण किया था, विफल होगया। इसमें लज्जा काहेकी ?

हेलेन—किसने आक्रमण करनेको कहा था ? और चन्द्रगुप्तने आपका क्या अपराध किया था ? यूनानियोंके साथ उन्होंने स्वयं प्रयत्न करके विवाद मोल नहीं लिया था। वे विना विरोधके सिन्धुके दूसरी ओर राज्य करते थे। आप इसको भी न सह सके। मैंने तो पहले ही मना किया था। अच्छा हुआ।

सेल्यूकस—माळ्म होता है कि तुम विजातियोंकी जीतसे प्रसन्न हो रही हो।

हेलेन—क्यों न होऊँगी! यूनान हारा है, परन्तु धर्मकी तो जीत हुई है।—पिताजी, जो एक प्रतिष्ठित राज्यकी शान्तिको भंग करने जाता है, वह चाहे बाहरका शत्रु हो, चाहे उसी राज्यकी प्रजा हो, वह महापातकी है। सैकड़ों माताओंको पुत्रहीना कर देना, बालिकाओंको पिताहीन कर देना, सती नारियोंको पतिहीना कर देना, देशभरमें घोर भय फैला देना—और यह सब केवल एक विजय-गौरवके लिए, एक उद्दाम प्रवृत्तिकी ताड़नासे, केवल एक खयालके लिए—इससे भी बढ़-कर क्या कोई महापाप हो सकता है?

सेल्यूकस—तो मैं वही पापी हूँ।

हेलेन—और उसका फल भोग रहे हो।

सेल्यूकस—युद्धमें हार जीत होती ही है। इस बार हार हो गई है। अबकी बार यदि छुटकारा पाऊँ तो—

हेलेन—विजयी असभ्य जातिके लोगोंकी दयापर निर्भर रहकर? कहाँ गई वह आपकी प्रतिज्ञा कि—या तो जय होगी या मृत्यु? लज्जा नहीं आती आपको?—ऊः! कैसा अधःपतन है!

सेल्यूकस—हेलेन, तुम्हारे मुखसे ऐसी बातें! यह मेरी दुर्गतिकी पराकाष्ठा है! इससे अधिक और क्या हो सकता है!—जब कि अपनी ही कन्या—जिस मातृहीना बालिकाको छातीपर सुलाकर और अपने हाथों खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया है—इस विजय-यात्रामें सब कुछ छोड़कर आ रहा हूँ, केवल उसे छोड़कर न आ सका—आज वही कन्या—अरे यह भाग्यका फेर है! (कम्पित स्वरसे) यह पराजयका दुःख मेरे हृदयमें उतना दुःख नहीं देता बेटी, जितना—(मुँह नीचा कर लेता है।)

हेलेन—ना पिताजी, मुझसे अपराध हुआ। क्षमा कीजिए।

सेल्यूकस—नहीं हेलेन, अपराध मेरा ही है, मुझे क्षमा कर दे।

हेलेन—नहीं पिताजी, अपराध मेरा ही है। किन्तु बड़े अभिमानसे, बड़ी आगसे जल-भुनकर मैं यह बात कहती हूँ। यह पुत्रके प्रति माताका क्रोध है। यह तिक्त हालाहल अनन्त सुधा-समुद्रको मथनेसे निकला है। नहीं पिताजी, आप छुटकारा पाइए और छुटकारा पाकर यूनानके इस अपमानका बदला चुकाइए। मैं आपको मुक्त करूँगी, मैं चन्द्रगुप्तके साथ विवाह करूँगी।

सेल्यूकस—नहीं बेटी, मैं अपने छुटकारेके लिए यह मूल्य नहीं दूँगा।

[चन्द्रगुप्तका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—नहीं, वीरवर, मूल्य देनेकी आवश्यकता नहीं है। यूनान-सम्राट्, आप मुक्त हैं। मैंने आपको छोड़ दिया।—इच्छा हो तो फिर मगध देशपर आक्रमण करिएगा, चन्द्रगुप्त उसके लिए तैय्यार रहेगा।—जाइए वीरवर, जाइए। जाओ राजकन्या, आप लोग मुक्त हैं।—रक्षकगण!

सेल्यूकस—यह क्या!

चन्द्रगुप्त—सम्राट्, हिन्दू जाति बर्बर असभ्य नहीं है। वह भी सिकन्दर-शाहकी राजा पुरुके प्रति दिखाई हुई सुजनताका उत्तर देना जानती है। अपने देशको चले जाइए। वीरवर, आप मुक्त हैं। रक्षकगण!

[रक्षकगणोंका प्रवेश।]

चन्द्रगुप्त—ये मुक्त हैं, इन्हें छोड़ दो। अच्छा तो सम्राट्, मैं जाता हूँ।

(प्रस्थानके लिए उद्यत।)

सेल्यू०—(आश्चर्यसे) भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त, तुम महान् पुरुष हो। एक दिन तुमने मेरी प्राणरक्षा की थी, मैं उसको भूला नहीं

हूँ। आज तुमने विना किसी शर्तके हम लोगोंको मुक्त कर दिया, यह भी मैं न भूलूँगा। भारतसम्राट्, मैं प्रास्ताविक सन्धिकी सब शर्तोंसे सम्मत हूँ। मैंने जिस साम्राज्य-खण्डको छोड़ दिया है, यदि कर सकूँगा तो उसे बाहु-बलसे फिर जय करूँगा, परन्तु तुमको मैं अपनी कन्या नहीं दे सकता। क्योंकि तुम हिन्दू हो।

हेलेन—हिन्दू भी तो मनुष्य हैं।

सेल्यू०—हेलेन!—(विस्मयसे हेलेनकी ओर देखने लगता है, हेलेन सिर झुका लेती है।)

चन्द्रगुप्त—राजकन्या, समझ गया, मैं अपने इस महत् सम्मानको सिर झुकाकर ग्रहण करता हूँ। (सेल्यूकसकी प्रति) किन्तु वीरवर, मैं यह भिक्षा ग्रहण करनेमें असमर्थ हूँ। मैं मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूँ कि मैं आपकी कन्याके प्रेममें मुग्ध हूँ। और यह आजसे नहीं, जिस दिन मैंने अपने कैशोर और यौवनकी संधिमें, सिन्धुनदके तट-पर, निदाघके समुज्ज्वल संध्यालोकमें इस शान्त मुखच्छविको देखा था, उसी दिनसे, इस मुखने मेरे समस्त ध्यानपर अधिकार कर लिया है और कल्पनाको तार-स्वरमें बाँध दिया है। मेरे यौवनका वह स्वप्न किसी समय सफल होगा और मेरी मानसिक प्रतिमा कभी मूर्तिमती होकर मेरे सन्मुख खड़ी होगी, ऐसी दुराशा मैंने कभी नहीं की थी। आज वह गौरव, आज वह उत्सव, वह स्वर्ग मेरी मुट्ठीमें आकर भी मेरे कठिन स्पर्शसे खिसक गया।—नहीं सम्राट्, मेरे बन्धुवर चन्द्रकेतु मृत्युके समय अपनी भगिनी छायाको मुझे समर्पण कर गये हैं और यह उनका अंतिम कालका अनुरोध था। मैं निरुपाय हूँ। भारतवर्षकी भावी सम्राज्ञी मलयराज-दुहिता छाया होगी।

[सहसा छायाका प्रवेश।]

छाया—यह महाराजकी अनुकम्पा है। किन्तु छाया इस अनुग्रह-दत्त सम्मानकी भिखारिणी नहीं है। भारत-सम्राट्की योग्य महिषी—यही यूनान-सम्राट्की कन्या—हेलेन है। (हेलेनके प्रति) बहिन, तुम बड़ी सौभाग्यवती हो, क्योंकि महाराज चन्द्रगुप्त तुम्हारे अनुरागी हैं। मैं स्वच्छन्द मनसे अपने हृदयकी निधि—अपने सर्वस्व—को तुम्हें दान करती हूँ। लो बहन, (लड़खड़ाते हुए पैरोंसे हेलेनके पास जाती है और उसका हाथ पकड़कर स्थिरमूर्ति चन्द्रगुप्तके हाथमें देकर कहती है—) इस अमूल्य रत्नको अपने वक्षःस्थलमें धारण करो—यह मेरे लिए सबसे अधिक गौरवका मुहूर्त्त है।—किन्तु बहिन, यदि तुम यह जान पातीं कि कितना मूल्य देकर मैंने यह गौरव मोल लिया है, तो ! (आँखोंको कपड़ेसे मूँदकर जल्दीसे प्रस्थान।)

चन्द्रगुप्त—(स्वप्नसे जगे हुए मनुष्यकी भाँति अर्धस्वगत) नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। चन्द्रकेतु !—नहीं, कभी नहीं।—सम्राट्, आप लोग मुक्त हैं।

(चन्द्रगुप्त चिन्तित भावसे चले जाते हैं।)

सेल्यू०—हेलेन, यह सब क्या हुआ ?

हेलेन—कुछ समझमें नहीं आया।

सेल्यू०—तुम चन्द्रगुप्तके साथ ब्याह करोगी ?

हेलेन—हाँ पिता।—अनुमति दीजिए।

सेल्यू०—अनुमति दूँगा। परन्तु यह तो कभी स्वप्नमें भी नहीं सोचा था। (चिन्तित भावसे चला जाता है।)

हेलेन—आप कैसे जान सकेंगे पिता कि म यह विवाह क्यों करना चाहती हूँ ? इतने तर्क-वितर्कों और अनुनय-विनयोंसे जो साधन

नहीं कर सकी हूँ, वही इस विवाहद्वारा साधन करूँगी।—क्या प्रेम नहीं कर सकूँगी? यह शौर्य—ये करुणार्द्र नेत्र,—यह महत् हृदय —क्या इतना सब होनेपर भी प्रेम न कर सकूँगी? एण्टीगोनस!—मुझे क्षमा करो।—हे ईश्वर! हृदयमें बल दो। (प्रस्थान।)

द्वितीय दृश्य।

स्थान—चाणक्यका घर।

समय—प्रभात।

[चाणक्य अकेले हैं।]

चाणक्य—एक समुद्र है जिसमें न तो तरंगें हैं, न शब्द होता है और न उसका कोई अन्त है। जहाँ तक आँख जाती है, वहाँ तक मृत्युकी भाँति स्थिर दिखाई पड़ता है। (धीरे धीरे टहलने लगते हैं और फिर एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहते हैं—) क्षमता स्नेहके अभावको पूरा नहीं कर सकती। हृदयकी संचित आकांक्षा गैरिक निस्रावकी भाँति प्रकट होती और फिर भस्म होकर बिखर जाती है। स्नेहका स्रोत हृदयकी सबसे गहरी तहसे उठता है और मस्तिष्ककी तीव्र ज्वालाकी आँचसे भाप होकर उड़ जाता है। (फिर स्थिर दृष्टिसे बहुत दूरीपर प्रकाशित मैदानकी ओर देखकर कहते हैं-)—यह सुन्दर प्रभात, यह गहरी नीलिमा,—एक दिन था—कौन है?

[पहरेवालोंसे घिरे हुए कात्यायनका प्रवेश।]

चाणक्य—अरे आप आ गये? आओ भाई!

कात्यायन—इस समय व्यंग्य करनेसे क्या प्रयोजन है चाणक्य—मैं तुम्हारा क़ैदी हूँ। अपराध किया है।—सजा दो।

चाणक्य—बन्धन खोल दो प्रहरी ! (पहरेदार बंधन खोल देता है।)

चाणक्य—लो, अब तो तुम हमारे क़ैदी नहीं रहे ? अब हम और तुम दोनों एकसे हैं। अब हममें और तुममें कोई भेद नहीं है।

कात्यायन—भेद कैसे नहीं है ! मेरे चारों ओर हथियारबन्द पहरेदार हैं और तुम स्वतन्त्र बैठे हो।

चाणक्य—तुम लोग बाहर चले जाओ।

(पहरेदार बाहर चले जाते हैं।)

चाणक्य—अब तो हम लोगोंमें कोई भेद नहीं है भाई ?

कात्यायन—भेद नहीं है ! तुम्हारे एक इशारेसे ही इसी घड़ी मेरे जीवनका शेष मुहूर्त हो सकता है। मैं क़ैदी हूँ—और तुम एक विशाल साम्राज्यके सर्वमय कर्त्ता धर्त्ता हो।

चाणक्य—यह छुरा लो। इसे मेरे वक्षःस्थलमें पूरा भोंक दो और अपने मंत्रित्वके रास्तेको साफ कर डालो। (छुरा देते हैं।)

कात्यायन—तुम्हारा अभिप्राय क्या है चाणक्य ?

चाणक्य—मैंने साम्राज्यके जंगलको साफ़ कर दिया है। एक ऊसर भूमिको उर्बर क्षेत्रमें परिणत कर दिया है—जो तुमसे न हो सका था। इस विशाल साम्राज्यमें एक त्रस्त शान्ति विराज रही है। बाहर शत्रुगण त्रस्त हैं। राजपथके समीप पथिक सम्पत्ति रखकर निर्भय होकर सो सकता है। किन्तु यह विराट् शान्ति पर्वतकी नाईं स्थिर, निष्प्राण है। नहीं, मैं इसे सजीव नहीं कर सका। शायद तुम कर सको।—मंत्रित्व चाहते हो, तो उसे छोड़े देता हूँ।

कात्यायन—तुम बड़े कूट हो। तुम्हारी अभिसन्धिकी थाह पाना मेरे लिए असाध्य है।

चाणक्य—मैं चाणक्य, जनेऊ छूकर कहता हूँ और इसी घड़ी मंत्रित्व छोड़ता हूँ, यदि तुम उसे चाहते हो तो। तुम मूर्ख हो, किन्तु तुम्हारे हृदय है। तुम उसे कर सकोगे, जो मैं नहीं कर सका।

कात्यायन—यह क्या! ब्राह्मणके प्रभुत्वको क्षमताके शिखर तक पहुँचाकर—

चाणक्य—सब भ्रम है! हृदयको भूखा रखकर शासन नहीं किया जा सकता। मैंने जान लिया है कि मेरे कठोर शासनमें जो क्षमता स्वप्नके महलकी नाईं आकाश-स्पर्शी हो रही है, वह स्वप्नके प्रासादके ही समान आकाशमें लीन हो जायगी। यह घर नहीं है, यह ईंटोंका पजावा है। ये वृक्ष नहीं हैं, केवल सूखे काठोंके ढेर हैं। ब्राह्मणकी निर्जीव क्षमताको फिर मंत्र-बलसे गढ़कर खड़ी कर दे सकता हूँ, किन्तु ब्राह्मणके ब्राह्मणत्वको नहीं लौटा ला सकता। शूद्रको लाल लाल आँखें दिखला करके भयभीत कर सकता हूँ, किन्तु उसके हृदयमें भक्तिका सोता नहीं बहा सकता।—राक्षसी, मुझे कहाँ ले आई है? मैंने क्या किया! क्या किया!

कात्यायन—क्या किया?

चाणक्य—यह बौद्धधर्मकी बाढ़ आ रही है।—मैं दूर भविष्यत्‌में क्या देखता हूँ, जानते हो?

कात्यायन—क्या?

चाणक्य—इस साम्राज्यका पुनः खण्ड-खण्ड होना और उसके ऊपर प्रेतोंका भैरव नृत्य देखता हूँ। तदनन्तर एक महाशक्ति आकर इस गलित शवके ऊपर अपनी जादूकी लकड़ी घुमावेगी और उस बिखरे हुए खण्ड-खण्ड मांस-पिंडको एक करके नूतन शक्तिसे संजीवित

करेगी तथा अपने न्याय-शासनसे ब्राह्मण और शूद्रको जोतकर समभूमि कर देगी।—लो, इस मंत्रित्वको ग्रहण करो।

कात्यायन—यह किस मूल्यपर बिकता है?

चाणक्य—केवल तुम्हारा बन्धुत्व चाहता हूँ और कुछ नहीं।

कात्यायन—अच्छा अभिनय करते हो!

चाणक्य—विश्वास करो भाई, यह अभिनय नहीं कर रहा हूँ। आज मैं बहुत ही दीन हूँ। चाणक्य कूट, कौशली और विचक्षण है। चाणक्यने भारतवर्षमें विविध जातियोंके समवायसे एक महा संगीतकी रचना की है। यदि आकाशमें कोई ईश्वर है, तो वह अवश्य ही मेरी इस महा सृष्टिको मुग्ध दृष्टिसे निरीक्षण कर रहा है! सब किया मैंने, किन्तु उसमें प्राण-प्रतिष्ठा न कर सका। और कर भी कैसे सकता! बाहर तुम मेरी इस अद्भुत बुद्धिको देख रहे हो; परन्तु मेरे हृदयको चीरके देखो भाई, यह एक मरुभूमि हो रहा है।—इसमें एक कण भी कारुण्य, स्नेह और विश्वासका नहीं है! साँस नहीं है, इस खालको रखकर क्या करूँ? चीर-फाड़कर फेंके देता हूँ (अपनी छाती पीटने लगते हैं।)

कात्यायन—आश्चर्य है! चाणक्य तुम और अधीर! यह दुर्दम तेज, यह अटल प्रतिज्ञा, यह तीक्ष्णबुद्धि—

चाणक्य—बुद्धि, बुद्धि, बुद्धि! सुनते सुनते बहिरा हो गया हूँ। राह, घाट, वाट, संसार भरमें एक यही बात सुन पड़ती है कि चाणक्यकी कैसी बुद्धि है! सारा संसार विना पलक मारे विस्मयसे मेरी ओर देख रहा है,—जैसे लोग किसी विभीषिकाको या धूमकेतुको देखते हैं! इस बुद्धिका मैं आज तक देववाणीकी भाँति अनुसरण करता आया हूँ। पर यह वर नहीं, मेरे लिए अभिशाप है। इस समय वह फिरकर

खड़ी हो गई, और मैंने उसका मुँह देख पाया है; वह सजीव मूर्ति नहीं है, निर्जीव ठठरी है। वह इतने दिनोंतक मुझे चलाये लिये जा रही थी—पर अब भगाती है—बड़ी भयंकर है! (काँप उठता है।)

कात्यायन—तुम क्या पागल हो गये हो चाणक्य !

चाणक्य—(कुछ देर चुप रहकर) कैसा सुन्दर प्रातःकाल है। पृथ्वी विवाहके लिए तैयार हुई कन्याकी ऐसी सजी हुई है। उसके मुखपर सूर्य्यकी सुनहरी किरणें ईश्वरके आशीर्वादकी भाँति आकर पड़ रही हैं। और केवल मैं ही द्वारपर भिक्षुकके समान खड़ा हुआ उसे देख रहा हूँ।

कात्यायन—चाणक्य ! चाणक्य !

चाणक्य—यह सुन्दर हास्यमय जगत्—और मैं इसका कोई भी नहीं हूँ! एक मैं ही इस असीम सौन्दर्य-राज्यसे निकाला हुआ हूँ! संसारमें अमृत-समुद्रका ज्वार आ रहा है और मैं पंगुके समान तापित तृषित हृदयसे किनारेपर पड़ा हुआ छटपटा रहा हूँ—तपोवनकी भूमिमें शूकरके समान तलैयाकी कीचमें लोट रहा हूँ।

कात्यायन—आश्चर्य्य! ऐसा कभी नहीं देखा था।

चाणक्य—तो भी एक दिन था—

(दूरसे गाना सुन पड़ता है।)

चाणक्य—तो भी एक दिन था, जब संसार मेरे निकट उत्सव-मंदिरके समान मालूम होता था, पृथ्वीके ऊपरसे सौन्दर्य्य-समुद्र उच्छ्वसित होकर बहा जाता था और आकाश इंद्र-धनुषके रंगोंसे रँगा हुआ जान पड़ता था। इसके बाद— (संगीत समीप होता है।)

चाणक्य—(कान लगाकर सुनकर) वही स्वर, वही आवाज़—कात्यायन! भाई! ज़रा उसे बुला तो लाओ।

कात्यायन—किसको ?

चाणक्य—उस भिक्षुकको और भिक्षुककी लड़कीको।

कात्यायन—यह क्या ! क्या तुम—

चाणक्य—(अनुनयसहित) जाओ भाई—(कात्यायन जाता है।)

चाणक्य—ऐसा क्यों होता है ! इस बालिकाके स्वरको सुनकर ऐसा क्यों होता है ! (पसीना पोंछ लेता है।)

[गाते गाते भिक्षुक और भिक्षुककी लड़कीका प्रवेश।
साथमें कात्यायन।]

विहाग।

सुनें यह कैसा प्रिय संगीत।
महा सिन्धुके उस तटसे ज्यों आता इधर प्रनीत॥ सुनें०॥
कातर-हृदय मधुर तानोंसे कौन पुकारे आज।
"आजा, आजा, अरे चला आ, मेरे पास विराज"॥ १॥
कहता है—"आ, जल्द चला आ, दौड़ा हुआ अजान।
मृत्यु-जराका भय न यहाँ है, मेरा कहना मान॥ २॥
सदा स्निग्ध मधुमास यहाँ है, रहती सदा बहार।
गीति-गन्धसे भरी हवा भी, चलती है इस पार॥ ३॥
बोझ भूतका क्यों लादे है ? जैसे पशु अज्ञान।
क्यों बेगार भुगत भूतोंकी, मरे वृथा नादान ?॥ ४॥
देख सुधा-सागर वह उमड़े पाकर चन्द्र-प्रकाश।
फेंक भूतका बोझ, इधर आ लड़के, मेरे पास॥ ५॥
अरे मूढ़, ओ अंध, चेत क्यों करे न तू मतिमंद।
क्यों कारागृहके भीतर यों पड़ा हुआ है बन्द॥ ६॥
है परमानँद यही जो मेरी करे चाह हो दास।
क्यों प्रवासमें घरके लड़के, पड़ा गैरके पास"॥ ७॥

कात्यायन—ऐसा दार्शनिक भिक्षुक तो अब तक कभी देखा ही नहीं था। "तत्पुरुषः समानाधिकरणपदः कर्मधारयः"—अर्थात् वही

एक पुरुष प्रकृतिके सहित समगुणान्वित होनेपर—अर्थात् जीव-भावसे जन्मग्रहण करनेपर, कर्म धारण करता है और इसी लिए कर्मफल भोग करता है । ओह ! माळूम होता है भिखारी, तुमने पाणिनि अवश्य पढ़ा है ।

भिक्षुक—नहीं बाबा ।

कात्या०—किन्तु तुम्हारे गानेके प्रत्येक पदमें पाणिनि विराजमान है । यह सब गाना तुमने सीखा किससे ?

भिक्षुक—बाबा, एक ब्राह्मणसे ।

कात्यायन—सो तो सीखोहीगे, और कौन सिखायगा !

चाणक्य—(बालिकाके प्रति) इधर तो आ बेटी ! (बालिका दौड़कर चाणक्यके पास आ जाती है ।)

चाणक्य—(उसके सिरपर हाथ फेरते फेरते) मुख बिलकुल वैसा ही है । दोनों आँखें भी वैसी ही हैं । बिलकुल ही वैसीं—परन्तु—अच्छा भिखारी, तुमसे एक बात पूछते हैं । सच कहो, यह तुम्हारी ही लड़की है ?

भिक्षुक—मेरी तो है ही, नहीं तो और किसकी है ?

चाणक्य—सच कहो । तुमको बहुतसा धन दूँगा । सच कहो ।

भिक्षुक—नहीं बाबा, यह मेरी लड़की नहीं है । मैंने इस माणिक्यको मार्गमें पड़ा पाया था । तभीसे इसको अपनी निजकी कन्याकी भाँति पाला है ।

चाणक्य—(आग्रहसहित) तो यह तुम्हारी लड़की नहीं है ?

भिक्षुक—नहीं बाबा, पड़ी हुई पाई थी ।

चाणक्य—कहाँ पाई थी ?

भिक्षुक—भगवानने दी है। यदि ऐसा न होता, तो इस अंधे बूढ़ेको हाथ पकड़कर कौन लिये लिये फिरता ? नहीं जानता कि किस पुण्यके फलसे मैंने इस बेटीको पाया है। डकैती करके खाता था, उस पापसे अब मेरी दोनों आँखें फूट गई हैं।

चाणक्य—(और अधिक आग्रहसे) तो तुम डाँकू थे ? अब उस व्यवसायको तुमने छोड़ दिया है ?

भिक्षुक—छोड़ न देता, तो क्या करता बाबा ! किसकी गर्दनपर दस सिर हैं, जो चन्द्रगुप्तके राज्यमें डकैती कर सके ?

चाणक्य—इस लड़कीको कहाँ पाया था ?

भिक्षुक—अवन्तीपुरमें बाबा !

चाणक्य—(उत्तेजित भावसे) अवन्तीपुरमें ? किस स्थानपर ?

भिक्षुक—मार्गमें।

चाणक्य—नहीं। एक ब्राह्मणके घरसे चुरा कर लाये थे ? सच कहो।—डरो मत। चुरा कर लाये थे ?

भिक्षुक—नहीं, बाबा !

चाणक्य—मार डालूँगा—नहीं तो सच सच बता दे। डकैती करके लाया था ?

भिक्षुक—हाँ, बाबा !

चाणक्य—नदीके किनारेवाले घरसे ?

भिक्षुक—जी हाँ।

चाणक्य—(हृदयको दबाकर) हृदय उछल मत, धैर्य रख।—उस समय इसकी उमर कितनी थी ?

भिक्षुक—उस समय यह तीन या चार बरसकी होगी बाबा !

चाणक्य—इसका नाम क्या था ?

भिक्षुक—आत्तिरि ।

चाणक्य—आत्रेयी ! सुनते हो कात्यायन, इसका नाम था आत्रेयी ।—इसके बापका क्या नाम था ?

भिक्षुक—चाणक्य ।

चाणक्य—(एकदम उछलकर उच्च स्वरसे) डाँकू !—नहीं, तुमको नहीं मारूँगा । तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा । डरो मत । कात्यायन—नहीं, सिपाही !

[सिपाहियोंका प्रवेश ।]

चाणक्य—नहीं, जाओ ।—भिक्षुक, मैं ही वह ब्राह्मण हूँ और यह कन्या मेरी है । (सिपाहियोंका प्रस्थान ।)

भिक्षुक—मेरी लड़कीको मत छीनो बाबा ! यह मुझ अंधेकी लकड़ी है ।—मुझे खाने तकको नहीं मिलेगा ।

चाणक्य—तुम्हें एक जागीर दे दूँगा । डाँकू, तुमने मुझे पथका भिखारी बना दिया था । आज तुमने मुझे सम्राट् बना दिया । तुमने मुझे नरकमें पटककर फिर स्वर्गपर चढ़ा दिया । मैं तुम्हें मारकर तुम्हारी मूर्त्ति स्थापित करके पूजा करूँगा । नहीं नहीं—यह क्या ! यह आनन्द है या दुःख ?—अब ऐसा कुछ करना होगा जिससे यह मालूम हो कि मैं जीता हूँ । (हँसते हैं ।)

कात्यायन—चाणक्य ! चाणक्य !

चाणक्य—कात्यायन, तुम नाड़ी देखना जानते हो ? जरा देखो तो । (हाथ बढ़ा देता है ।) मैं जीता हूँ या नहीं, बताओ तो । यह इहलोक है या परलोक ?—यह स्वप्न है या सत्य ? यह प्रकाशका उच्छ्वास है या अंधकारकी बाढ़ ? यह सृष्टिका संगीत है अथवा प्रलयका कल्लोल ?—देखो तो !—नहीं तो यह क्या संभव था कि इतने दिनों बाद मेरी कन्या—

भारतके शासन-कर्त्ताकी कन्या—उसीके द्वारपर भीख माँगने आवे ?—कात्यायन ! कात्यायन !—(रोने लगता है ।)

कात्यायन—चाणक्य, शान्त होओ ।

चाणक्य—नहीं, यह सम्भव नहीं है । यह सब छल है, प्रतारणा है, षड्यन्त्र है । कात्यायन, यह तुम्हारा ही षड्यन्त्र है ।—पर नहीं, यह वही मुख है, वे ही आँखें हैं । आत्रेयी—बेटी मेरी ! इतने दिन इस बूढ़ेको भुलाये रही ! अरी पाषाणहृदया बेटी, तू इतने दिन कहाँ रही ! (कन्याको छातीसे चिपटा लेता है)—कात्यायन, सुनो, कुंजवनमें सामगान उठ रहा है, उठ रहा है न ? देखो, यह नदी आनन्दके मारे रोमाञ्चित हो उठी है । आकाशसे एक स्निग्ध-सौरभ-हिल्लोल बही आ रही है ! मेरा शरीर अवसन्न हुआ आता है ! मुझे मेरी कुटीमें पहुँचा दो कात्यायन ! (सब जाते हैं ।)

तृतीय दृश्य ।

स्थान—मलयराजका राजमहल ।

समय—उज्ज्वल प्रभात ।

[मलयराज-कर्मचारी और मगध-राजदूत ।]

कर्म्मचारी—हमारा मलयराज भारत साम्राज्यके अन्तर्भूत होने पर भी स्वाधीन है । सम्राट् यहाँके शासनमें किसी प्रकारका भी हस्तक्षेप नहीं करते हैं ।

दूत—यह राजकन्या ही क्या इस राज्यका शासन करती हैं ?

कर्म्मचारी—हाँ, राजकन्याने अपने भ्राताकी मृत्युके अनन्तर शासनका भार अपने ही हाथमें ले लिया है ।

दूत—क्या इनका अभी विवाह नहीं हुआ है ?

कर्म्मचारी—नहीं ।

दूत—क्या ये विवाह करेंगी ही नहीं ?

कर्म्मचारी—यह मैं कह नहीं सकता । वे निर्जनमें अकेली रहती हैं और राजकार्य्यके सिवाय और किसी विषयमें किसीसे बातचीत नहीं करतीं ।

दूत—सम्राट्की भी यही दशा है । परन्तु अब उनका विवाह होनेवाला है ।

कर्म्मचारी—आश्चर्य है ।—यह देखो राज्ञी आ रही हैं !

(दोनों अदबसे हटकर खड़े हो जाते हैं । राज्ञी छाया प्रवेश करती हैं । कर्मचारी अभिवादन करता है ।)

दूत—राज्ञीकी जय हो ।

छाया—आप मुझसे साक्षात् करना चाहते थे ?

दूत—(कुछ मस्तक झुकाकर) हाँ राज्ञी !

छाया—क्यों ?

दूत—मैं मगधसे निमंत्रण-पत्र लेकर आया हूँ । (पत्र देता है ।)

छाया—(काँपते हुए हाथसे पत्र खोलते खोलते) सब कुशल तो है न ?

दूत—हाँ राज्ञी—

छाया—(पत्र पढ़ते पढ़ते विचिलित हो जाती हैं और पत्रको दूर फेंक-कर कहती हैं—) भारत-सम्राज्ञीका अनुरोध !—कौन है वह सम्राज्ञी ? (फिर अपनेको सँभालकर गंभीर स्वरसे कहती हैं—) नहीं, मैं जाऊँगी । (मंत्रीसे) मंत्री, राजभाण्डारमें जितने मूल्यवान् रत्न हैं, उन सबको संग्रह करके एक हार बनवाओ । सुनारको बुलाओ ।

कर्म्मचारी—जो आज्ञा ।

छाया—और परसों प्रातःकाल मेरी मगध-यात्राका प्रबन्ध करो।

कर्म्मचारी—जो आज्ञा।

छाया—इनको विश्रामागारमें ले जाओ।

(कर्म्मचारी और दूतका प्रस्थान।)

छाया—(सहसा उस पत्रको उठा लेती हैं और उसको बार बार चुम्बन करती हुई कहती हैं-) हे मेरे जीवनके आनन्द! हे मेरे सर्वस्व! तुम अब मेरे नहीं रहे।—तुम अब उसके हो गये! ऐसा क्यों हो गया!—अरे मैं ही उनको अपने हाथसे यूनानकी राजकन्याके हाथमें सौंप आई थी, फिर मैं इसको क्यों नहीं सहन कर पाती! हृदय क्यों फट रहा है! पृथ्वी शून्य क्यों जान पड़ती है!—चन्द्रगुप्त! चन्द्रगुप्त!—नहीं, छाया! तुम राज्ञी हो। दृढ़ होओ। निर्मम भावसे अपनी प्रवृत्तिका गला घोंट दो। लोहेके ढक्कनसे इस उठती हुई तप्त बाष्पको रोक दो। किस लिए इतना दुःख?—क्या इतना भी नहीं सह सकूँगी?—नहीं,—इस प्रेमको दमन करूँगी। उनके सुखमें ही सुखी होऊँगी। काहेका दुःख है! हे प्रियतम, तुम सुखी होओ और यही मेरे जीवनकी साधना होवे। (गाते गाते जाती है।)

गजल कव्वाली।

बिथाएँ सब सहूँगी मैं, करो तुम भोग सुख सारे।
हँसो तुम सुखमें, मैं रोऊँ तुम्हारे ही लिए प्यारे॥
रहो तुम चैनसे सोते, सदा सुख-स्वप्न तुम देखो।
अधोमुख बैठ सिरहाने, जगूँ मैं मित्र, मन मारे॥
तुम्हारे शत मनोरथमें, तुम्हारे प्रिय किरण-पथमें।
खड़ी हूँगी न मैं, करुणा तुम्हारी माँगने प्यारे॥
रहो तुम सुखमें, बस मैं और कुछ चाहूँ नहीं मनमें।
अनादर भी सहूँगी, दूर रह अनुरागके मारे॥

चतुर्थ दृश्य ।

स्थान—सेल्यूकसका खेमा ।

समय—प्रभात ।

[अकेला सेल्यूकस, दूरमें सैनिकगण ।]

सेल्यूकस—चन्द्रगुप्तके साथ हेलेनका विवाह ! अन्तमें यह भी हो गया ! इस नगरमें जो उत्सवका महान् कोलाहल हो रहा है, वह मानों यूनानकी लज्जाको विघोषित कर रहा है।—कहाँ ! हेलेन अब भी तो नहीं आई ! वह उत्सवमें मत्त हो रही है। अब क्या वह अपने बूढ़े बापको याद करेगी ! संतान—केवल आगेहीको देखती है ! पीछेको बिलकुल ही नहीं देखती। उसके लिए भविष्य ही सब कुछ है, पिता तो अतीत है। समझमें नहीं आता कि लड़केको शिक्षा देकर और कन्याको ब्याह देकर पिता किस सुखके लिए जीता रहता है ! लड़की-लड़के तो फिर उसे चाहते नहीं।—पिताका भाग्य भी कितना निष्ठुर है ! उसके अगाध स्नेहका कोई प्रतिदान नहीं है !—यह लो, हेलेन आ गई !

[हेलेनका प्रवेश ।]

सेल्यू०—हेलेन, मैं अबतक तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

हेलेन—म स्वयं ही आई हूँ—आपको राजसभामें ले जानेके लिए।—चलो पिताजी !

सेल्यू०—नहीं, मैं नहीं जाऊँगा, इसी लिए मैंने तुम्हें यहाँ बुला भेजा था।

हेलेन—मैं आपको ले जाऊँगी, इसी लिए आई हूँ !

सेल्यू०—नहीं हेलेन, मैं नहीं जाऊँगा।

हेलेन—क्यों पिताजी, अपनी कन्याके विवाहोत्सवमें आप न जायँगे ?

सेल्यू०—नहीं बेटी, मैं यहींसे बिदा ले लेता हूँ।

हेलेन—समझ लिया।—अच्छा।—जाना न जाना आपकी इच्छा-पर है। मैं जबर्दस्ती तो आपको ले नहीं जा सकती। आप मेरे बन्दी तो हैं नहीं।

सेल्यू०—हेलेन, तुम मुझसे अभिमान न करो, रूठो मत।

हेलेन—नहीं पिताजी, मेरा आपके ऊपर अब ऐसा क्या हक है, जो मैं आपके ऊपर अभिमान करूँ! जिनके निकट मेरा अभिमान या रूठना चल सकता था वे—नहीं, उन बातोंको जाने दो—पिताजी, तो बिदा दीजिए।

सेल्यू०—इतनी जल्दी? एक मुहूर्त्तका भी विलंब नहीं सह सकती हो! हायरे मूर्ख पिता! इतने स्नेह, इतने आदर और इतने यत्नसे पाली हुई कन्या, एक ही दिनमें एकदम अपनीसे पराई हो गई—तेरी कोई न रही। हेलेन! मेरी बेटी! आज मैं तेरा कोई नहीं रहा! किन्तु मैं तेरा पिता हूँ और जबसे तूने जन्म लिया है, तबसे मैं ही तेरी मा हूँ। (आँखें ढक लेता है।)

हेलेन—पिताजी, मुझे क्षमा कीजिए। मुझसे अपराध हुआ। पिता! पिता! यह क्या! आपकी आँखोंमें जल! यह तो मैं नहीं देख सकती। पिता! मुझे क्षमा करो। यही अंतिम बार क्षमा माँगती हूँ और फिर कभी क्षमा नहीं चाहूँगी। (घुटने टेक देती है।)

सेल्यू०—उठो बेटी! (हाथ पकड़कर उठाता है और ऊपरको देखकर कहता है—) तेरा कोई अपराध नहीं। अपराध मेरा है। पिताकी गंभीर वेदनाको तू कैसे समझ सकती है! जिस समय मुखसे स्पष्ट

बात भी नहीं निकलती थी, उस समयसे हाथों हाथ पाली हुई कन्याको एकबारगी चिर जन्मके लिए बिदा कर देनेसे जो दुःख होता है, वह तू कैसे समझ सकेगी ! पुत्र और कन्यायें यदि एक बार भी स्नेहसे पिताकी ओर नहीं देखती हैं, तो यह स्वाभाविक ही है। उनका इसमें अपराध ही क्या है !—पृथ्वीका नियम ही यह है। अपराध हमारा है, जो इस नियमको जानते हुए भी अपने अगाध स्नेहके प्रतिदानकी प्रत्याशा करते हैं और प्रत्याशा करके व्यथित होते हैं। सारा अपराध इन पिताओंका ही है।

हेलेन—यह क्या पिता !—बिदाका दुःख क्या केवल पिताहीको होता है ? इस समय माता-पिताको छोड़कर जाते हुए क्या कन्याकी छाती नहीं फटती ? क्या पिता ही प्रेम करना जानते हैं, कन्यायें नहीं जानतीं ?

सेल्यू०—(आँखें बन्द करके) नहीं बेटी, तुम भी प्रेम करती हो।

हेलेन—नहीं, हम कुछ भी प्रेम नहीं करतीं।

सेल्यू०—नहीं, करती हो।—मैंने झूठ कहा है।

हेलेन—पिता, नारीका तो जीवन ही एक प्रेमका इतिहास है। पहले मातापिता, फिर पति, फिर पुत्र-कन्या—इन्हींको लेकर उसका क्षुद्र संसार है। यहाँपर ही उसकी आशा, भरोसा, सुख और सम्पत्ति है। पुरुष जब अपना घोंसला छोड़कर ऊँचे उठकर गगनकी सूर्य्योज्ज्वल नीलिमामें हर्षसे विचरण करता है, उस समय नारी अकेली एकान्तमें बैठी हुई उसी घोंसलेको अपने पंखोंसे घेरे हुए रक्षा करती है।—स्नेह पुरुषके विश्रामका प्रमोद, आलस्यकी चिन्ता और अवकाशका चित्त-विनोद है। किन्तु वही स्नेह नारीका समस्त मुहूर्त्त, समस्त चिन्ता, समस्त कार्य, समस्त जीवन है। स्नेहमें ही उसका जन्म, निवास और मृत्यु है और

यदि आगे कोई स्वर्ग है, तो इस स्नेहमें ही उसका स्वर्ग है। स्नेह ही उसका विहार, शयन, निद्रा, स्वप्न, आहार और निःश्वास है। फिर भी आप कहते हैं कि हम लोग प्रेम नहीं करतीं ?

सेल्यू०—नहीं बेटी, ऐसा कहकर मैंने बहुत बड़ी ग़लती की है।

हेलेन—पिता, आपके ऊपर मेरा जो स्नेह है, उसीके कारण मैंने एण्टीगोनससे विवाह नहीं किया, यह आप जानते हैं? और क्या यह जानते हैं पिता, कि आज इस समस्त नगरमें जो उत्सव-दुंदुभी बज रही है, वह मेरे कानोंमें मरणका आर्त्तनाद निनादित करती है? सब हँसते हैं, कौतुक करते हैं, उत्सवका आयोजन करते हैं और शायद मेरे सौभाग्यको देखकर डाह भी करते हैं; परन्तु मेरे मर्मको भेद करके एक क्रन्दन बाहर आना चाहता है, जिसका मैंने गला दबा रक्खा है, उसे जिठने नहीं देती हूँ। पिता, जानते हो कि आपको छोड़ते हुए (हृदयको पकड़-कर) इस हृदयमें क्या हो रहा है!—एक प्रलयकी आँधी उठ रही है।

सेल्यू०—यह क्या! तुम चन्द्रगुप्तसे प्रेम नहीं करती हो?

हेलेन—क्या यह बात भी समझानी होगी!

सेल्यू०—तब तुमने यह विवाह क्यों किया?

हेलेन—विवाह!—नहीं पिता, यह विवाह नहीं है—यह मृत्यु है—आपकी हेलेनकी यह मृत्यु है। मैं आपसे कहे देती हूँ कि मैंने विवाह नहीं किया है, अपनेको बलि दिया है।

सेल्यू०—क्यों?

हेलेन—मैंने मनुष्य-जातिके महा हितके लिए आत्म-बलिदान दिया है। सेल्यूकस और चन्द्रगुप्तकी विद्वेषाग्निको अपने रक्तसे बुझाया है। दो युद्धमान जातियोंके मध्यमें पड़कर उनके उद्यत खड्गको अपने हृदय-पर ले लिया है।

सेल्यू०—यह काम तुमनें क्यों किया हेलेन? यह विवाह मेरे हृदयको काँटेकी तरह पीड़ा पहुँचा रहा है। किन्तु मैं एक बार तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध हुआ था, अब नहीं होना चाहता था, इसलिए तुम्हारे सुखहीके लिए मैंने इस विवाहकी सम्मति दी थी। यदि तुमको इस विवाहसे सुखी जान पाता, तो कन्याके आनन्दमें अपने दुःखको भूल जाता। किन्तु यदि यह जानता कि तुम जान-बूझकर दुःखको वर रही हो तो—

हेलेन—पिता, यदि दुःख होता तो क्या मैं स्वेच्छासे उसका वरण कर सकती? पराये हितके लिए, कर्तव्यके लिए, आत्म-वलिदान कर देनेसे एक परम सुख, उल्लास और गौरव प्राप्त होता है।

सेल्यू०—यह तुम्हारे लिए गौरव है, किन्तु यूनानके लिए लज्जा है।

हेलेन—लज्जा! क्या इतना बड़ा विवाह जगतमें और कभी हुआ है? इस विवाहसे एक सदासे चलती हुई आँधी थम गई। इस विवाहसे दो दूर-दूर रहनेवाली आर्य-जातियाँ आज परस्पर आलिङ्गन कर रही हैं। यह विवाह हेलेन और चन्द्रगुप्तका नहीं है, यह कर्म और मोक्षका, चिन्ता और कल्पनाका, विज्ञान और कवित्वका है। इस विवाहसे दो सभ्यताओंके बीचका एक महा व्यवधान टूट गया, विद्वेषके जल-प्रपातके ऊपर एक पुल बँध गया, दो महादेश एक हो गये। इतना बड़ा विवाह जगतमें अबसे पहले और कभी हुआ था?

सेल्यू०—नहीं हेलेन, नहीं हुआ। किन्तु—

हेलेन—निहारकर देखिए पिता,—ये प्लेटो और कपिल इस विवाहमें एक साथ गान कर रहे हैं! सोलन और मनु एक दूसरेके गलेमें हाथ डाले खड़े हैं! होमरके मृदंगके साथ वाल्मीकिकी वीणा बज रही है! हिरोडोटस और व्यास, सुकरात और बुद्ध, एकिलिस और

भीष्म, पैन्थियन और पुराण एक हो गये ! यह क्या सहज बात है पिता ? इस विवाहसे पूर्व और पश्चिम, समुद्र और आकाश, स्वर्ग और मर्त्य, इहकाल और परकाल एक दूसरेमें लीन हो ! गये इस प्रकारका विवाह जगतमें यही, इस बार हुआ, नहीं जानती कि फिर कभी होगा या नहीं ।

सेल्यू०—यह क्या ! एकटक होकर क्या देखती हो हेलेन ?—

हेलेन—(प्रकृतिस्थ होकर सहसा अस्फुट स्वरसे) कुछ तो नहीं—पिता, बिदा दीजिए । आशीर्वाद दीजिए ।

सेल्यू०—सुखी होओ बेटी !

हेलेन—विदा दो पिताजी ! (पिताकी गोदमें मुख छिपा लेती है ।)

सेल्यू०—हेलेन ! बेटी मेरी ! (रोने लगता है) रोती हो ?—हेलेन !

हेलेन—नहीं पिता ! ओह ! (अपनेको सभालकर) पिता, कर्त्तव्य मुझे पुकार रहा है और किसीकी पुकार सुननेको मेरे पास अवकाश नहीं है ।—तो जाती हूँ पिताजी । (घुटने टेककर सेल्यूकसका पदतल स्पर्श करके और फिर वही हाथ अपने माथेपर लगाकर) जितने दिन जीवन धारण करूँ, यही चरण-स्पर्शकी स्मृति मुझको संजीवित किये रहे ।—जगदीश ! अपना बलि ग्रहण करो ! (जल्दीसे चली जाती है ।)

सेल्यू०—हेलेन ! (आगे चलकर और फिर पीछे हटकर) नहीं, देवी ! —यह अपूर्व है ! स्वर्गीय है ! इतनी बड़ी बलि संसारमें और किसीने इसके पूर्व नहीं दी थी ।—चलूँ, अब देशको लौट चलूँ । पर कहाँ ? यह क्या है !—घोर अन्धकार है !—राह भी दिखाई नहीं पड़ती !—मुझको अंधा करके कहाँ चली गई बेटी मेरी !

[एण्टीगोनसका प्रवेश ।]

सेल्यू०—कौन ?

एण्टी०—मैं हूँ एण्टीगोनस।

सेल्यू०—(विस्मयसे) एण्टीगोनस !—तुम यहाँ ! इस समय !—

एण्टी०—आश्चर्य हो रहा है सम्राट् ?

सेल्यू०—ओह !—तुम मेरी हारपर व्यंग्य करने आये हो ?

एण्टी०—नहीं सम्राट्।

सेल्यू०—तो फिर ?

एण्टी०—अपने पिताका समाचार लाया हूँ।

सेल्यू०—उसका प्रयोजन नहीं है।

एण्टी०—है। यदि प्रयोजन न होता, तो मैं इस संवादको जाननेके लिए पागलोंकी भाँति यूनान देशको दौड़ा हुआ न जाता। और फिर उस संवादको लेकर पागलोंकीही भाँति भारतवर्षको दौड़ा हुआ न आता। प्रयोजन है।

सेल्यू०—किन्तु हेलेन आज महाराज चन्द्रगुप्तकी महिषी है।

एण्टी०—उनसे योग्यतरके साथ उसका विवाह नहीं हो सकता था। मैं स्वयं राजसभाको जाता हूँ—राज-दम्पतिको आशीर्वाद देनेके लिए।

सेल्यू०—यह क्या तुम व्यंग्य कर रहे हो ?

एण्टी०—यह व्यंग्य नहीं है, यह बिलकुल सत्य है सम्राट् ! हमारे ऊपर होकर एक बड़ा भारी जलका पूर निकल गया है। हमारी जो मिट्टी थी, उसको वह धो-पोंछकर बहा ले गया है। जो छोड़ गया है—वह है भग्नशिला-स्तूप; किन्तु उसका प्रत्येक शिलाखण्ड आकाशसे भी अधिक निमल और वज्रसे भी अधिक कठोर है। दीर्घ तपस्यासे मांस गलकर गिर गया है, शेष रह गया है केवल एक कंकाल मात्र; किन्तु उसका प्रत्येक हाड़ पवित्र

है। हमारा जो कलंक था वह आगमें जल गया, अब जो रह गया है वह है शुद्ध सोना।

सेल्यू०—इसका अर्थ क्या है?

एण्टी०—सकाम प्रेमको निष्काम प्रेमसे विशुद्ध कर देना, मनुष्यको देवता बना देना, संसारको स्वर्ग बना देना, सोचा था कि यह मनुष्य द्वारा साध्य नहीं है। किन्तु जहाँ साधना है वहाँ सिद्धि है—यह अब मैं अच्छी तरह जान गया हूँ। इसीसे तो आज हेलेनपर भगिनीकी भाँति प्रेम कर सका हूँ।

सेल्यू०—कुछ समझमें नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो।

एण्टी०—यह तुम्हारी समझमें आ कैसे सकता है? जिसने एक भोली कृषक-कन्याको लुभाकर, धर्मानुसार उसका पाणिग्रहण करके, तदनन्तर उसको और उसके पुत्रको भिक्षुक करके इस संसारमें छोड़ दिया हो और स्वयं सम्राट् बन बैठा हो, वह भला इस बातको कैसे समझ सकता है? सम्राट्, उस अभागिनीकी—मेरी माकी—मृत्यु हो गई है। आपका निर्मम परित्याग, आपका घातक खड्ग जो नहीं कर पाया, मेरे स्नेहके उच्छ्वासने वही साधन कर दिया। मेरी मा स्नेहके पूरमें बहकर चली गई! इतने लम्बे दुःखके अनन्तर मा इतना सुख न सह सकी! (स्वर काँपने लगता है) सम्राट्—

सेल्यू०—आँखोंके सम्मुख अँधेरा छाया जा रहा है।—तुम कौन हो? कौन हो तुम?

एण्टी०—मैं खरीदा हुआ गुलाम हूँ, भिक्षुक हूँ, और जो समझो वह हूँ। किन्तु मैं जारज नहीं हूँ। मेरे पिताने मेरी माताके साथ धर्मानुसार विवाह किया था।

सेल्यू०—(रुँधे स्वरसे) कौन है तुम्हारा पिता?

एण्टी०—मेरा पिता ?—परिचय देते लज्जासे मेरा ऊँचा सिर नीचा हुआ जाता है सम्राट् !—(काँपते हुए स्वरसे) मेरा पिता है पत्नीत्यागी सेल्यूकस ।　　　(जल्दीसे चला जाता है ।)

(सेल्यूकस द्वार पकड़कर स्थिर भावसे सिर नीचा किये खड़ा रह जाता है, फिर धीरे धीरे चला जाता है ।)

पञ्चम दृश्य ।

स्थान—मगधका राजमहल ।

समय—रात्रि

[विविध रंगकी पताकायें उड़ रही हैं और दूरमें अस्फुट यन्त्र-संगीत हो रहा है । चन्द्रगुप्त और हेलेन सिंहासनपर बैठे हुए हैं । बगलमें मंत्री और शरीर-रक्षक बैठे हैं । सामने चाणक्य, कात्यायन और आत्रेयी हैं ।]

चाणक्य—महाराज चन्द्रगुप्त, तुमने अपने बाहु-बलसे हिन्दूकुशसे लेकर कुमारिका पर्य्यन्त एक विशाल राज्य स्थापित किया है । यह ऐसा साम्राज्य है, जो शायद आजके पहले भारतवर्षके किसी नृपतिकी कल्पनामें भी न आया होगा । तुमने बाहु-बलसे यूनानके सम्राटकी विराट्र सेनाको पराजित किया है । तुम्हारा नाम भारतके इतिहासमें धन्य होवे ।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेवहीने इस कीर्त्तिकी सूचना दी थी ।

चाणक्य—वत्स, हमारा काम समाप्त हो गया । अब हम विदा लेते हैं ।

चन्द्रगुप्त—गुरुदेव, हमको आप किस अपराधसे त्याग किये जाते हैं ?

चाणक्य—वत्स, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है । हमने जो अब तक किया है, वह अद्भुत होनेपर भी ब्राह्मणोचित काम नहीं है । दर्प, उच्चाशा,

प्रतिहिंसा ये ब्राह्मणकी उचित प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। ब्राह्मणका धर्म है क्षमा, तितिक्षा, त्याग। तुमने जिस साम्राज्यको बाहुबलसे पाया है, उसका इन योग्य मंत्रीकी सहायतासे शासन करो।

कात्यायन—और आप?

चाणक्य—मैं अब शासन नहीं करना चाहता। अब तो आओ मा, (आत्रेयीके प्रति) तुम्हीं मुझपर शासन करो! तुम्हीं इस भ्रान्त पुत्रके दोनों हाथोंको स्नेह-बन्धनसे बाँध दो मा!—जिस प्रकार कि यशोदाने माखन-चोरके हाथ बाँधे थे।—कात्यायन, यह क्या जादू जानती है? —इसके मोह-मंत्रके प्रभावसे आज पाषाण फटकर उसमेंसे जल बह निकला है, शुष्क वृक्षमें कोंपलें आ गई हैं, मरुभूमिकी तप्त छातीपर सुधा-समुद्रकी लहरें लीला कर रही हैं।—तब आओ मा—मेरे जीवनके गोधूलि-लग्नमें पूर्ण ज्योत्स्नालोककी भाँति आकर मेरे गाढ़ आकाशको व्याप्त कर दो। जगद्धात्री माताकी भाँति मेरे इस जीर्ण मंदिरमें उतर आओ और मेरा हाथ पकड़कर आलोकित परकालमें ले चलो मा!—

(आत्रेयीके साथ प्रस्थान।)

चन्द्रगुप्त—इस शुष्क आवरणके भीतर ऐसा हृदय छुपा हुआ था!

कात्यायन—प्रकृति आज प्रकृतिस्थ हो गई। इतनी बुद्धि—पर हृदय नहीं! यह अनियम क्या पृथ्वीपर बहुत दिन चल सकता है?

[मुराका प्रवेश।]

मुरा—महाराज चन्द्रगुप्तकी जय हो।

(चन्द्रगुप्त और हेलेन सिंहासनसे उतरकर प्रणाम करते हैं।)

मुरा—उस 'शूद्राणी मा' सम्बोधनका आज यही समुचित उत्तर हुआ। उसी शूद्राणीका पुत्र आज भुवन-विजयी भारत-सम्राट् चन्द्रगुप्त है।

चन्द्रगुप्त—और उसी माताके नामसे यह राजवंश संसारमें 'मौर्य्य-वंश' के नामसे प्रसिद्ध होवे ।

मुरा—चिरंजीवी होओ बेटा ! चिरंजीविनी होओ बेटी ! आओ मेरी गृहलक्ष्मी ! आओ, मेरे गृहको आलोकित करो । (प्रस्थान ।)

चन्द्रगुप्त—हेलेन, आज एक प्रियस्वरके अभावसे यह जयध्वनि प्रकाण्ड रोदनके ऐसी प्रतीत होती है ।

हेलेन—महाराज, किसके प्यारे स्वरके अभावसे ?

चन्द्रगुप्त—प्रियतम बन्धु चन्द्रकेतुके । आज इस विजयोत्सवमें उसका मुख सबसे अधिक उज्ज्वल होता और उसीकी ज्योतिसे हमारी सभा आलोकित होती ।

हेलेन—क्या मैं उनके अभावको पूरा नहीं कर सकती हूँ ?

चन्द्रगुप्त—नहीं हेलेन, जिस संसारमें उपकारका प्रत्युपकार तो क्या पाया जायगा, उपकारको कोई स्वीकार तक नहीं करना चाहता, उस संसारमें जो अपने सर्वस्वको बन्धुके पैरोंपर रख देता है, वह बन्धु क्या वस्तु है और उसके खो जानेसे कितना दुःख होता है, यह वही जान सकता है, जिसने कि ऐसे बन्धुको खो दिया हो । हाय, ऐसे बन्धुके प्रति मैंने रुखाई की थी ! वह मेरी अवहेलनाको पैरोंसे कुचलकर चला गया और मुझे सदाके लिए अपराधी बनाकर छोड़ गया—

[एण्टीगोनसका प्रवेश ।]

एण्टीगोनस—हेलेन !

हेलेन—(चौंककर) कौन ? एण्टीगोनस ? (दोनों हाथोंसे मुख छिपा लेती है ।)

एण्टीगोनस—हेलेन, बहन, मैं यूनानसे तुम्हारे विवाहके लिए दहेज लाया हूँ और वह है तुम्हारे भाईका स्नेहाशीर्वाद । और भारत-

सम्राट् चन्द्रगुप्त, तुम्हारे लिए लाया हूँ, यह मजबूत लोहेकी मूठवाली तलवार, इसको अपने साम्राज्यके कल्याणमें नियुक्त करो। (अपनी तलवार चन्द्रगुप्तके पैरोंपर रख देता है।)

चन्द्रगुप्त—सैनिक, तुम कौन हो ?

एण्टीगो०—पहिचाना नहीं !—किन्तु चन्द्रगुप्त, मैं तुमको नहीं भूला हूँ। जिसके आघातसे एण्टीगोनसकी तलवार हाथसे छूट गई हो, उसको एण्टीगोनस नहीं भूल सकता।—किन्तु वह भी दैवेच्छा थी। उस आघातसे तुमने मुझे पितृहत्याके पापसे बचाया था।

चन्द्रगुप्त—यह कैसे ! तुम्हारे पिता कौन हैं ?

एण्टी०—यूनान-सम्राट् सेल्यूकस।

हेलेन—(चौंककर) क्या, सेल्यूकस तुम्हारे पिता हैं ?—

एण्टी०—हाँ हेलेन, तुमने जो मेरे प्रेमको स्वीकार नहीं किया था सो अच्छा ही किया था—वह भी दैवेच्छा थी। किन्तु क्या अब तुम मुझे भाई कहकर प्रेम कर सकोगी ?

हेलेन—यह क्या ! एण्टीगोनस तुम—भाई ! यह एक महा विप्लव है ! यह एक साथ ही ध्वंस और सृष्टि, मृत्यु और पुनर्जन्म है—एण्टीगोनस, तुम मेरे भाई हो ?—

एण्टी०—हाँ बहिन !

हेलेन—एण्टीगोनस, तुमने एक बड़े भारी पर्वतका बोझा मेरी छातीपरसे हटा लिया। इससे मानों अब मैं सुखपूर्वक स्वास ले सकती हूँ। एण्टीगोनस—भाई—मुझे क्षमा करो। (जोशके साथ) क्षमा करो भाई—(एण्टीगोनसके पैरोंमें गिर पड़ती है।)

एण्टी०—उठो हेलेन, (उठाकर) चन्द्रगुप्त, तुमने आज जिस रत्नको पाया है, उसको यत्नसहित अपने हृदयमें धारण करो। ऐसा

रत्न ..सारमें और दूसरा नहीं है। यह रूप—निदाघका निर्मेघ प्रभात जिसके सम्मुख म्लान प्रतीत होता है और वर्षाकालीन नैश विद्युत् जिसके सामने लज्जित हो जाती है। यह रूप तो महान् है ही, परन्तु यह इसके महत् अन्तःकरणके सामने कुछ भी नहीं है। हेलेन बाहरसे अप्सरा है और अन्तःकरणसे देवी है।

[छायाका प्रवेश।]

छाया—भारतसम्राट् और भारतसाम्राज्ञीकी जय हो।

चन्द्रगुप्त—अरे यह तो छाया है!—आओ छाया! इस म्रियमाण उत्सवको अपने स्नेह-हास्यसे संजीवित करो।

छाया—सम्राट्, मैं भारत-सम्राज्ञीको एक छोटासा यौतुक उपहार देने आई हूँ। यदि आज्ञा हो, तो मैं अपने हाथसे यह हार सम्राज्ञीके गलेमें पहनाकर चली जाऊँ!

चन्द्रगुप्त—(आश्चर्य्यसहित) कहाँ जाओगी छाया!

छाया—(म्लान हँसी हँसकर) इस विपुल ब्रह्माण्डमें क्या संन्यासिनी छायाके लिए थोड़ासा भी स्थान नहीं मिलेगा?

चन्द्रगुप्त—छाया, चन्द्रकेतु मुझको परित्याग करके चले गये, अब तुम भी मुझे छोड़कर मत जाओ। तुम मेरी भगिनीस्वरूपिणी होकर मेरे हृदयके शून्य स्थानको पूर्ण करो।

छाया—महाराज, (मस्तक झुका लेती है, फिर मस्तक उठाकर-) यही हो महाराज! मैं इस अभिमानको चूर्ण करूँगी। इस महा अग्निपरीक्षामेंसे मैं नहीं भागूँगी। मैं आपकी भगिनीकी भाँति आपके पार्श्वमें रहती हुई राजदम्पतिके सुखसे सुखी होऊँगी। यही मेरा व्रत हो, यही मेरी साधना हो और यही जीवनकी तपस्या हो। आशीर्वाद दो महाराज, जिससे कि मेरी यह तपस्या सिद्ध हो। (मुख ढँक लेती है।)

हेलेन—(छायाके पास जाकर और स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़कर) छाया ! छाया ! मुख खोलो भगिनी, तुम्हें काहेका दुःख है ! आओ बहिन, हम दोनों नदियाँ एक ही सागरमें जाकर लीन हों। सूर्य-किरण और वृष्टि मिलकर मेघके शरीरमें इन्द्र-धनुषकी रचना करें। काहेका दुःख है बहिन !—एक ही आकाशमें क्या सूर्य और चन्द्र दोनों नहीं उदय होते हैं ?—आओ बहिन !—

छाया—नहीं हेलेन, मैं सहन करूँगी। यदि सहन न कर सकी, तो नारीका जन्म ही भला क्यों ग्रहण किया !—आओ हेलेन, मैं तुम्हारे गलेमें यह रत्नहार पहना दूँ। (हाथ पकड़कर) यह मुख, यह सौन्दर्य, यह महत् हृदय—अपूर्व है !—तुम मेरे चन्द्रगुप्तको जरूर सुखी कर सकोगी। अब कुछ दुःख नहीं है।—आओ हेलेन !

(रत्नहार हेलेनके गलेमें पहिनाना चाहती है।)

हेलेन—(छायाके दोनों हाथ पकड़कर) छाया, तुम भूल करती हो। आओ, हम तुमको बतला दें कि यह हार तुम्हें किसको पहिनाना चाहिए। (छायाके हाथों वह हार चन्द्रगुप्तके गलेमें पहिना देती है। फिर छायाके दोनों हाथ पकड़कर और उठाकर अपने गलेमें डाल लेती है।) और उससे अधिक मूल्यवान् यह हार मेरे गलेमें पहिना दो ! (आलिंगन करके) छाया, तुम चन्द्रगुप्तकी बहिन नहीं हो, मेरी बहिन हो।

एण्टी०—और चन्द्रगुप्त, तुम छायाके भाई नहीं हो, मेरे भाई हो।

(आलिंगन।)

यवनिका-पतन।

समाप्त